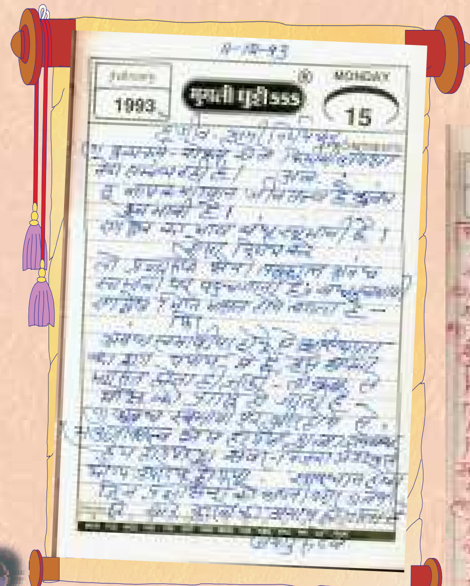

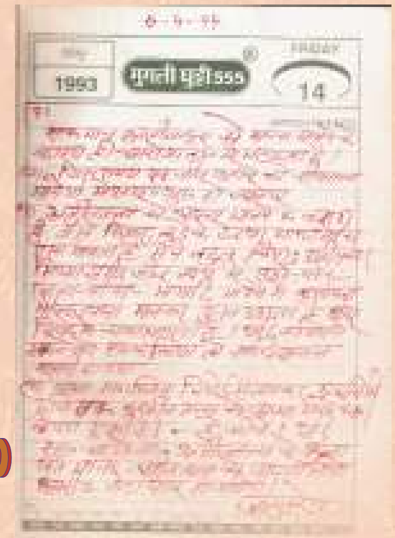

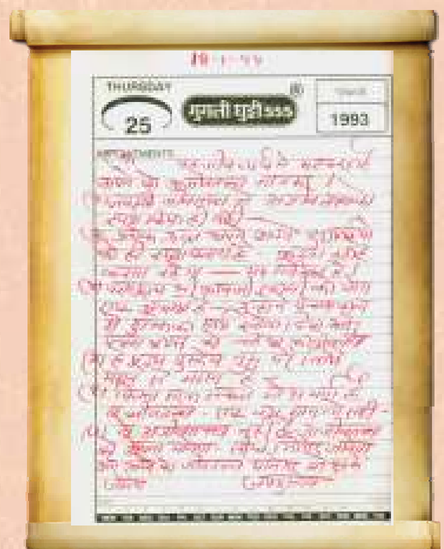

मङ्गल समर्पण

9

पण्डितजी की दैनन्दिनी

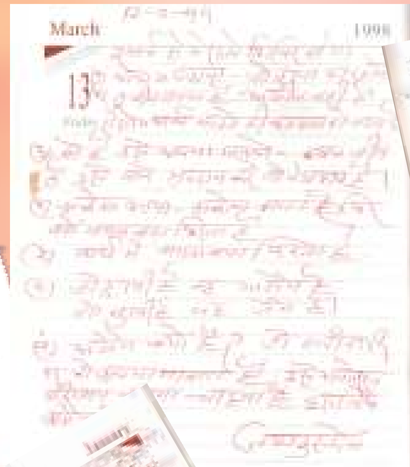
March
1998
13

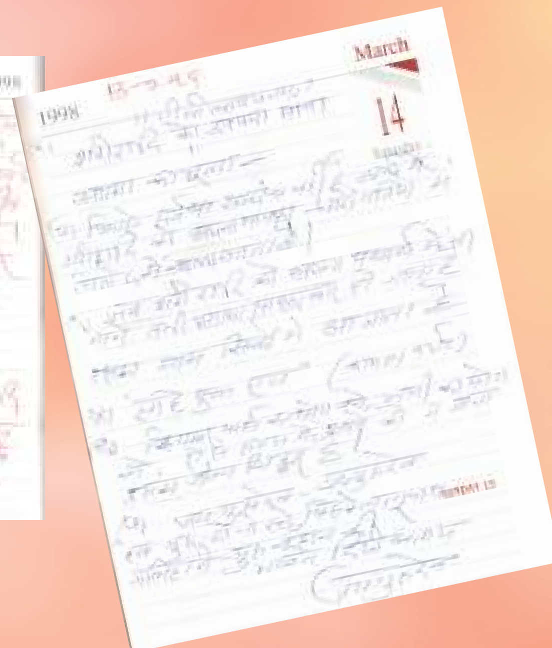
1998
March
14

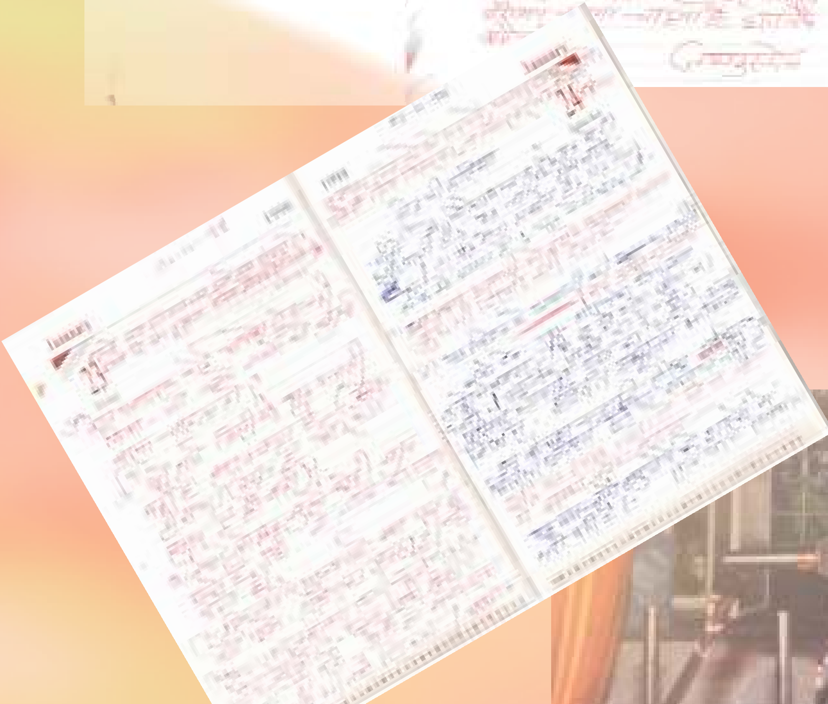

February
16
1998
February
17

दिनाँक 15-9-1993

प्रश्न- जब (1) अत्यन्त भिन्न पदार्थों का; (2) एकक्षेत्रावगाही शरीर, द्रव्यकर्म का; (3) शुभाशुभविकारीभावों का; (4) निर्मल शुद्धपर्यायों का, ज्ञानियों के साथ सम्बन्ध नहीं है तो फिर कहने में क्यों कहा जाता है ?

उत्तर- ज्ञानियों की दृष्टि एकमात्र अपने स्वभाव पर ही होती है; वे अपने में स्थिर नहीं रह सकते तो लोकव्यवहार में कथन करने की पद्धति है, उस पद्धति का अर्थ आचार्यकल्प टोडरमलजी ने उभयाभासी के दश प्रश्नों में किया है।

(1) जब अत्यन्त भिन्न पदार्थ अजीवतत्त्व से सर्वथा सम्बन्ध नहीं है तो लोकव्यवहार में यह मेरे भगवान हैं, यह मेरी धर्मपत्नी है, यह मेरा मकान है, यह मेरा धन आदि है — ऐसा कथन किया जाता है कि मेरा धन आदि है, इसमें ज्ञानी जानते हैं — इनसे सर्वथा सम्बन्ध नहीं है, परन्तु अस्थिरता सम्बन्धी राग है। हेय-उपादेय-ज्ञेय का सच्चा ज्ञान वर्तता है; इसलिये कथन में आता है, ये मेरे हैं - इसके बदले अज्ञानी मान लेते हैं कि 'मेरा धन है, मेरा लड़का है' - इससे मिथ्यात्व की पुष्टि होती है।

याद रहे —

(1) सम्बन्ध सर्वथा नहीं है;

(2) अभी पूर्ण वीतराग नहीं हुआ है;

(3) अस्थिरता सम्बन्धी राग है;

(4) दृष्टि, मात्र स्वभाव पर है;

ऐसा होने पर कहने में आता है — मेरा लड़का है, मेरा धन है; परन्तु अज्ञानी को, व्यवहार के कथन का मर्म न समझने का कारण, व्यवहारकथन को ऐसा का ऐसा मानने के कारण, गृहीतमिथ्यात्व की पुष्टि होती है।

2— (1) इसी प्रकार एकक्षेत्रावगाही शरीर, द्रव्यकर्म का ज्ञानियों के साथ सर्वथा सम्बन्ध नहीं है।

(2) अभी पूर्ण वीतराग नहीं हुआ;

(3) अस्थिरता सम्बन्धी राग है;

(4) दृष्टि, स्वभाव पर है;

वस्तु की पर्याय में जिस समय जो कार्य होना है, वही नियम से होता है और सर्वज्ञ के ज्ञान में उसी प्रकार ज्ञात हुआ है; - ऐसा जो नहीं मानता और निमित्त के कारण उसमें फेरफार होना मानता है, उसे वस्तुस्वरूप की या सर्वज्ञता की प्रतीति नहीं है।

मङ्गल समर्पण

— ऐसा होने पर कहने में आता है,मैं कैलाशचन्द्र हूँ, मैं उठता हूँ, मैं खाता-पीता हूँ- मैं सोता हूँ; परन्तु अज्ञानी, व्यवहार के कथन का मर्म न जानने के कारण, व्यवहारकथन को ऐसा का ऐसा मानने के कारण, गृहीत मिथ्यात्व की पुष्टि करता है।

3— इसी प्रकार शरीर की अस्थिरतासम्बन्धी राग को अपना नहीं मानता है, परन्तु शुद्धि के साथ राग होने से ज्ञानी, हेय-ज्ञेय जानता है परन्तु कहने में आता है ज्ञानी, देव-गुरु-शास्त्र की भक्ति करता है, श्रावक 12 अणुव्रतादिक का पालन करता है, मुनि 28 मूलगुण का पालन करता है —

ज्ञानी की दृष्टि एकमात्र स्वभाव पर है - ऐसा होने पर कहने में आता है, ज्ञानी, इस-इस प्रकार (अणुव्रत आदि का) पालन करता है।

अज्ञानी, ज्ञानी के कथन का मर्म न जानने के कारण, ऐसा का ऐसा मानने से गृहीत मिथ्यात्व की पुष्टि करता है।

4— इस प्रकार ज्ञानी की दृष्टि एकमात्र त्रिकाली स्वभाव पर होने से, 24 घण्टे शुद्धि की बुद्धि; अशुद्धि की हानि होती रहती है तो कहने में आता है, ज्ञानी को देशचारित्र प्रगटा है, मुनि को सकलचारित्र प्रगटा है; इसका मर्म अज्ञानी नहीं जानता ।वह (अज्ञानी) मिथ्यात्व की पुष्टि करता है।

अत: क्या करना ?

सबसे पहले सम्यग्दर्शन प्राप्त करना चाहिए तभी ज्ञानियों का मर्म पकड़ में आ सकता है।

हे गुरुदेव! आप धन्य हैं!!

अरे जीवों! एक बार अपनी ओर तो देखो, तभी जिनवाणी का मर्म समझा जा सकता है।

— जय गुरुदेव!

ज्ञानी के साथ - ऐसा-ऐसा सम्बन्ध देखने में आवे —

(1) लड़का मर जावे; सभी मर जावे; देव को मोक्ष हो जावे; गुरु चला जावे।

(2) शरीर में भयंकर से भयंकर बीमारी — कैन्सर, हार्ट की बीमारी में शरीर पूरा होते दिखे।

तू सामग्री को दूर करने का या होने का उपाय करके दु:ख मिटाना चाहता है और सुखी होना चाहता है, सो यह उपाय झूठा है। तो सच्चा उपाय क्या ? सम्यग्दर्शनादि से भ्रम दूर हो, तब सामग्री से सुख-दु:ख भासित नहीं होता, अपने परिणामों से ही भासित होता है।

- आचार्यकल्प पण्डित टोडरमल

(3) देव की भक्ति, गुरु की भक्ति आदि देखने में ही आवे, आदि बातों के समय पूर्ण ज्ञेय-उपादेय का विवेक वर्तता है।

(1) जैसे भरतजी, आदिनाथ भगवान के मोक्ष जाने पर, अरे क्या हो गया! रोने लगे।

(2) रामचन्द्र, पत्तों से पूछते हैं — तुमने मेरी सीता देखी — रामचन्द्रजी छह महीना, लक्ष्मण की लाश लेकर फिरे — अरे भाई! तुम बोलते नहीं, मैं घर पर जाकर क्या कहूँगा? आदि बातों का होना देखते हुए 24 घण्टे विवेक वर्तता है। तभी तो 12 वीं गाथा में जाना हुआ प्रयोजनवान कहा है।

निज जीवतत्त्व से एक समय के लिये भी दृष्टि हट जाये तो मिथ्यादृष्टि हो जाता है। अहो! पञ्चम काल की महिमा — अव्वल तो धर्म की प्राप्ति महान दुर्लभ है, क्योंकि यह उल्टे रास्ते पर चलता है और धर्म की प्राप्ति हो गयी तो क्रमशः स:मुक्त एवं तू जीव तत्त्व है; अजीवतत्त्व नहीं है — ऐसा यथार्थ ज्ञान होते ही मोक्ष का अधिकारी बन जाता है।

जैनधर्म-जैनकुल और पूज्य श्री कानजीस्वामी का समागम, मोक्ष की प्राप्ति के लिये मिला है - ऐसे समय में जो धर्म प्राप्त न कर सका, वह चारों गतियों में घूमता हुआ निगोद चला जाता है।

सर्वज्ञता कहते ही समस्त पदार्थों का तीनों काल का परिणमन सिद्ध हो जाता है। यदि पदार्थ में तीनों काल की पर्यायें निश्चित क्रमबद्ध न होती हों और उल्टी-सीधी होती हों तो सर्वज्ञता ही सिद्ध नहीं हो सकती; इसलिए सर्वज्ञता स्वीकार करनेवाले को वह सब स्वीकार करना ही पड़ेगा।

मङ्गल समर्पण

प्रातः 1½ बजे रात्रि   दिनाँक 5-11-93

प्रश्न- क्या अनादि से अजीवतत्त्व को अपना मानने के कारण ही चारों गतियों में भ्रमण करता हुआ निगोद चला जाता है ?

उत्तर- अरे भाई! बात इतनी ही है। इसे छोटी भूल कहें या भयंकर कैन्सर की भूल कहें—

जरा, शान्ति से विचारो! चिराग तले अंधेरा है। जबकि अजीवतत्त्व में किसी भी जीव ने कुछ न किया है, न कर ही सकेगा; मात्र एक समय की मान्यता की भूल है।

वर्तमान में तीर्थङ्कर के समान पूज्य गुरुदेव का योग मिला, तब भी न समझे, यह एक बड़ा अचम्भा है। अरे भगवान! तू अकृत्रिम चैत्यालय है, जीवतत्त्व है, कारणपरमात्मा है। 'कर विचार तो पाम'- सावधान! सावधान!!

जय पूज्य गुरुदेव!

(1) मोह महामद पियो अनादि, भूल आपको भरमतवादि।

(2) अपने को भूला, पर में एकत्व माना।

(3) द्रव्यकर्म-नोकर्म में एकत्वबुद्धि।

(4) स्वयं जीव है, माना अपने को अजीव।

(5) मैं भूल स्वयं के वैभव को, पर ममता में अटकाया है।

प्रश्न- सारे विश्व को बीमारी क्या ?

उत्तर- एकमात्र शरीर में एकत्वबुद्धि ही है।

प्रश्न- एकत्वबुद्धि के अभाव का क्या उपाय है ?

उत्तर- भेदविज्ञान ही है, अर्थात् स्व-पर की भिन्नपने का यथार्थ ज्ञान ही है।

— जय गुरुदेव!

जो अपने को सुखदायक हो-उपकारी हो, उसे इष्ट कहते हैं तथा जो अपने को दुःखदायक हो-अनुपकारी हो, उसे अनिष्ट कहते हैं। लोक में सर्व पदार्थ अपने-अपने स्वभाव के ही कर्ता हैं; कोई किसी को सुख-दुःखदायक, उपकारी-अनुपकारी नहीं।

- आचार्यकल्प पण्डित टोडरमल

दिनाँक 9-11-93

(1) मनुष्यभव, चारों गतियों के अभाव के ही लिये मिला है। यदि न चेता तो कहाँ जा करके पड़ेगा!

(2) धर्म के लिये — मात्र तू जीवतत्त्व है, अजीवतत्त्व नहीं है, इतना ही यथार्थ निर्णय करना है।

(3) आश्चर्य है, पूज्य श्री कानजीस्वामी का समागम मिलने पर भी ना सुलटा तो जीवन को धिक्कार है।

(4) मात्र दृष्टि बदलनी है। अरे, भाई! तेरा द्रव्यकर्म, नोकर्म से सर्वथा सम्बन्ध नहीं है। तू नोकर्म में कैसा पागल हो रहा है?

(5) स्वयं साक्षात परमेश्वर है, उस परमेश्वर को भूलकर व्यर्थ में भटकता है।

(6) जिनमन्दिर जो है, वह समवसरण का रूप है; जिनप्रतिमा, जिनसारखी — ऐसा ज्ञानी जानते हैं। —हे जीवो चेतो! चेतो! सावधान! सावधान!!

भवदीय

कैलाशचन्द्र जैन

दिनाँक 11-11-93

(1) विश्व में आदर्श, मात्र पञ्च परमेष्ठी ही हैं। उनमें से प्राय: (सम्यग्दृष्टि को छोड़कर) कहीं कोई दिखायी नहीं देता है।

(2) जिनधर्म ही धर्म है, बाकी की कुछ बात ही नहीं।

(3) अहो! स्थापनानिक्षेप के द्वारा अरहन्त भगवान ही दिखायी देते हैं, क्योंकि जिनप्रतिमा, जिनसारखी है।

(4) देव-गुरु-शास्त्र, साक्षात् मोक्षमार्ग दर्शा रहे हैं परन्तु तब भी ध्यान नहीं आता, यह एक अचम्भा है। पञ्च परमेष्ठी का कहना है — तेरा संसार भी अरूपी है, मोक्ष भी अरूपी है।

आत्मा में सर्वज्ञशक्ति है, वह 'आत्मज्ञानमयी' है। आत्मा परसन्मुख होकर पर को नहीं जानता, किन्तु आत्मसन्मुख रहकर आत्मा को जानते हुए लोकालोक ज्ञात हो जाता है; इसलिए सर्वज्ञत्वशक्ति, आत्माज्ञानमय है। जिसने आत्मा को जाना, उसने सर्व जाना।

मङ्गल समर्पण

(5) तुझे दिगम्बर धर्म मिला है और साथ में पूज्य गुरुदेव, तीर्थङ्कर समान उनका योग बना है - यह एक अचम्भा है, ऐसे समय में —

तू स्थाप निज को मोक्षपथ में, ध्या अनुभव तू उसे।
उसमें ही नित्य विहार कर, न विहार कर परद्रव्य में॥

(समयसार, 412 गाथा)

— जय गुरुदेव!

दिनाँक 11-11-93

(1) जिसे निज आरूपी आत्मा का अनुभव नहीं आया-

(2) जिसे द्रव्यकर्म-नोकर्म अपनेरूप से प्रतिभासित होते हैं, अर्थात् विश्व के अजीवपदार्थों में यह इष्ट है, यह अनिष्ट है — ऐसी बुद्धि वर्तती है, वह धर्म के लायक नहीं है।

थोड़े में —

जिसे अपना निज भगवान ही भासित होता है, वह धन्य है -

- जय गुरुदेव!

वाहिर नारकी कृत दुःख देखे - अन्तर सुखरस गटागटी!

अहो! सम्यक्त्व की महिमा -

अपने भगवान के सिवाय, दूसरा न होने के बराबर है।

- जय गुरुदेव!

कषायभाव होते हैं, सो पदार्थों को इष्ट-अनिष्ट मानने पर होते हैं, सो इष्ट-अनिष्ट मानना भी मिथ्याबुद्धि है क्योंकि कोई पदार्थ इष्ट-अनिष्ट है नहीं।

- आचार्यकल्प पण्डित टोडरमल

दिनाँक - 11-11-93

(1) जैसे सिद्धदशा है, वैसा ही अनुभव-ज्ञान चौथे गुणस्थान से शुरु हो जाता है। चौथे गुणस्थान में अनन्तानुबन्धी क्रोधादि के अभावरूप स्वरूप -चरणचारित्र प्रगट हो जाता है; पाँचवें में देशचारित्र; सातवें-छठवें में, सकल -चारित्र, क्रम से बढ़कर यथाख्यातचारित्र प्रगट हो जाता है। बाहरीरूप नोकर्म -द्रव्यकर्म व अस्थिरता का राग होता है, वह सब जाना हुआ प्रयोजनवान है।

इसका मर्म ज्ञानी ही जानते हैं।

(2) वास्तव में धर्म की शुरुआत, वृद्धि और पूर्णता में द्रव्यकर्म-नोकर्म-भावकर्म का जरा भी सम्बन्ध नहीं है। धर्म का सम्बन्ध, मात्र निज त्रिकाली भगवान से ही है। जैसे-जैसे त्रिकाली निज भगवान में स्थिरता बढ़ती, चली जाती है, क्रम से मोक्षदशा हो जाती है।

(3) जैसे, सिद्ध के साथ विश्व का सम्बन्ध है, वैसा ही चौथे गुणस्थान में शुरु हो जाता है।

(4) श्रद्धा अपेक्षा सिद्ध ही है। ज्ञान की अपेक्षा ज्ञेय है, जाना हुआ प्रयोजनवान है। चारित्र की अपेक्षा जितनी शुद्धि है, उतना धर्म है; बाकी अधर्म है।

-जय गुरुदेव!

दिनाँक 12-11-93

(1) जैसे, मृग को रेत में जल का प्रतिभास होता है; वैसे ही अज्ञानी को परद्रव्यों का करना और भोगना भासित होता है। वास्तव में परद्रव्यों का कर्तापना-भोक्तापना होता ही नहीं; मात्र अज्ञानी अपनी मान्यता से पागल बना फिरता है।

(2) जिसे परद्रव्यों का कर्तापना-भोक्तापना भासित होता है, वह सर्वज्ञ के मत से बाहर है - द्विक्रियावादी है; उसका सुलटना दुर्निवार है; यह अज्ञानमोह अन्धकार है; वह पद-पद पर धोखा खाता है; वह जिनवाणी सुनने लायक नहीं; यह उसका हरामजादीपना है। याद रक्खो।

एक द्रव्य का, दूसरे से कर्तापना-भोक्तापना सर्वथा नहीं है — ऐसा यथार्थ मानते ही जीव सुखी हो जाता है।

- जय गुरुदेव!

हे जीव! तेरे ज्ञानमात्र आत्मा के परिणमन में अनन्त धर्म एक साथ उछल रहे हैं, उसी में झाँककर अपने धर्म को ढूँढ़; कहीं बाह्य में अपने धर्म को मत खोज। तेरी अन्तरशक्ति के अवलम्बन से ही सर्वज्ञता प्रगट होगी।

मङ्गल समर्पण

परद्रव्यों को इष्ट-अनिष्ट मानकर राग-द्वेष करना, मिथ्यात्व है क्योंकि संसार का कोई पदार्थ, इष्ट-अनिष्ट होता तो मिथ्यात्व नाम नहीं पाता परन्तु कोई पदार्थ, इष्ट-अनिष्ट नहीं है और यह इष्ट-अनिष्ट मानकर राग-द्वेष करता है; इसलिए इस परिणमन को मिथ्यात्व कहा है।

– आचार्यकल्प पण्डित टोडरमल

दीपावली

दिनाँक 13-11-93

(1) जिनमन्दिर में भगवान महावीर, स्वसन्मुखता का इशारामात्र हैं, इसके बदले भगवान महावीर हमारा भला करेंगे — ऐसी मान्यतावालों की बुद्धि का दिवाला निकल गया है।

(2) जिसे भगवान के दर्शन के निमित्तरूप विशेष स्थिरता होती है, वह धन्य है, उसने दिवाली मानी।

(3) भगवान के दर्शन से स्वपर का विवेक उत्पन्न होता है, तब विभावभाव दूर होकर, स्वभावभाव, पर्याय में प्रगट हो जाता है।

(4) जिनप्रतिमा, जिन-सारखी कहा है। भगवान के निर्वाण से क्रमबद्धादि सब सिद्धान्त हल हो जाते हैं।

जिन भगवान के केवलज्ञान को माने, उधर वस्तुस्वरूप को माने, बेड़ा पार हो गया।

जैनकुल, मोक्ष जाने का दरवाजा खुला है। **– जय गुरुदेव!**

दिनाँक – 21-11-93

(1) विश्व, छह द्रव्यों के समूह को कहते हैं। विश्व में से कभी भी किसी द्रव्य का अभाव नहीं होता है।

(2) जिस जीव ने विश्व के द्रव्यों से अपने को सर्वथा भिन्न जान लिया, वह जीव हमेशा के लिए सुखी हो गया।

(3) जिसने विश्व के द्रव्यों से अपने को भिन्न नहीं जाना, वह जीव संसार में भ्रमण करता रहेगा।

(4) अरे भाई! प्रत्येक जीव को संसार में रहना है – जिसने अपने को समझ लिया, वह सादि-अनन्त सुखी हो गया; जिसने नहीं समझा, वह अनादि से दुःखी ही है और दुःखी ही रहेगा।

(5) पञ्चम काल में अब क्या करें? अरे भाई! मोक्षमार्गप्रकाशक में से उभयाभासी का प्रकरण समझ में आ जावे तो मोक्ष का दरवाजा खुल गया। **यही बात पूज्य गुरुदेव समझाकर चले गये।** **– जय गुरुदेव!**

दिनाँक 23-11-93

प्रश्न- दु:ख दूर होने का उपाय क्या है ?

उत्तर- (1) मोक्षमार्ग प्रकाशक, पृष्ठ 52;

(2) समयसार, गाथा तीन का मर्म;

(3) उत्पादव्ययध्रौव्ययुक्तं सत्; सम्पूर्ण दु:ख मिटाने का उपाय, ये ही जिनागम में तीर्थङ्करों ने बताया है।

(4) अपने को भूला, पर में अपना पना माना, इस भ्रम के कारण दु:खी हो रहा है।

(5) यह स्वयं साक्षात् भगवान है, उसका पता न होने से अजीवतत्त्व में 24 घण्टे पागल बना रहता है। इसका उपाय, मात्र ऊपर 1-2-3 में बताया है, वही ही है।

तू जीवतत्त्व है- अजीवतत्त्व नहीं है। **-जयगुरुदेव!**

दिनाँक - 24-11-93

धन, कन कंचन राज सुख - सबहि सुलभकर जान, दुर्लभ है संसार में एक यथारथ ज्ञान।

प्रश्न- यथार्थ ज्ञान क्या है, जिसे दुर्लभ कहा ?

उत्तर- तू जीवतत्त्व है, अजीवतत्त्व नहीं है। यदि इसका यथार्थ विश्वास आ जावे, मोक्षमार्ग शुरु हो जाता है; फिर क्रम से मोक्ष की प्राप्ति हो जाती है।

प्रश्न- 'बोधि आपका भाव है, निश्चय दुर्लभ नाहीं। भव में प्राप्ति कठिन है, यह व्यवहार कहाहि' — यहाँ ऐसा कहा है।

उत्तर- यह स्वयं ही है, कहीं किसी के पास से नहीं मिलेगा; इसलिए दुर्लभ नहीं है।

हे जीव! तू भगवान है; अजीवतत्त्व नहीं है। —इतना निर्णय करते ही मोक्षमार्ग, मोक्ष तेरे पास ही है।

प्रश्न- देव-गुरु-शास्त्र क्या शिक्षा देते हैं ?

उत्तर- तू स्वयं भगवान है। अपने भगवान की तरफ दृष्टि कर! बहुत हो गया - सावधान! अनादि से अनन्त तक, सब ज्ञानियों को नमस्कार!

- जय गुरुदेव!

जिस प्रकार पूर्णता को प्राप्त ज्ञान में निमित्त का अवलम्बन नहीं है; उसी प्रकार निचलीदशा में भी ज्ञान, निमित्त के कारण नहीं होता; इसलिए वास्तव में पूर्णता की प्रतीति करनेवाला साधक, अपने ज्ञान को परालम्बन से नहीं मानता, किन्तु स्वभाव के अवलम्बन से मानकर स्वोन्मुख करता है।

मङ्गल समर्पण

तत्त्वनिर्णय न करने में किसी कर्म का दोष है नहीं, तेरा ही दोष है, परन्तु तू स्वयं तो महन्त रहना चाहता है और अपना दोष कर्मादिक को लगाता है, सो जिनआज्ञा माने तो ऐसी अनीति सम्भव नहीं है।

– आचार्यकल्प पण्डित टोडरमल

दिनाँक – 26-11-93

चिन्ता के अभाव की रामवाण मन्त्र

प्रश्न– दु:ख का मूलकारण क्या है ?

उत्तर– चिन्ता।

प्रश्न– चिन्ता क्यों होती है ?

उत्तर– मूर्ख, पर को अपना मानता है और पर को अपने अनुसार परिणमाना चाहता है।

प्रश्न– चिन्ता के अभाव का उपाय जिन, जिनवर और जिनवरवृषभों ने क्या बताया है ?

उत्तर– (1) तू जीवतत्त्व है, तेरा अजीवतत्त्व से सर्वथा सम्बन्ध नहीं है क्योंकि अनादि-निधन वस्तुएँ भिन्न-भिन्न अपनी-अपनी मर्यादासहित परिणमित होती हैं। पर को परिणमित कराने का भाव, वर्तमान में निगोद है, भविष्य में भी निगोद है।

(2) यही बात प्रवचनसार, गाथा 93 में 'पारमेश्वरी व्यवस्था'; समयसार, गाथा 3 में तथा आचार्यकल्प टोडरमलजी ने लिखी है। **इसी बात को पूज्य श्री कानजीस्वामी, जो विद्वान सोनगढ़ आता था, दिखाते थे। यह अलौकिक महामन्त्र है।** **– जय गुरुदेव!**

दिनाँक – 26-11-93

प्रश्न– मिथ्या-अध्यवसाय क्या है ?

उत्तर– (1) जैसे, रात्रि को स्वप्न में राजा बना – रानी आयी, मन्त्री जय-जयकार कर रहे हैं; सुबह उठने पर यह सब झूठा है; उसी प्रकार स्वयं तो भगवान आत्मा है, चौबीस घण्टे शरीरादि के कार्य दिखते हैं, ये अपने नजर आना ही मिथ्या अध्यवसाय है।

(2) मैं कैलाशचन्द्र हूँ; सुबह उठना आदि मेरा कार्य; मकान-दुकान, स्कूटर-कार कार्य, मैं कारण; पाँच इन्द्रियों के भोग-भोग्य, मैं भोक्ता – यह सब मिथ्या अध्यवसाय है।

(3) जिस कार्य से अपना सर्वथा सम्बन्ध नहीं है, उन्हें अपने नजर आना, मिथ्या अध्यवसाय है।

(4) द्रव्यकर्म-नोकर्म से आत्मा का सर्वथा सम्बन्ध नहीं है, वे अपने नजर आना, मिथ्या अध्यवसाय है — यह अनन्त संसार का कारण है।

- जय गुरुदेव!

दिनाँक 1-12-1993

एक द्रव्य का, दूसरे द्रव्यों से किसी भी अपेक्षा कर्ता-भोक्ता का सम्बन्ध नहीं है, क्योंकि प्रत्येक द्रव्य का द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव पृथक-पृथक है।

अनादि-निधन वस्तुएँ भिन्न-भिन्न अपनी-अपनी मर्यादा लिये परिणमै है, कोई किसी का परिणमाया परिणमता नहीं — ऐसा अनादि अनन्त वस्तुस्वरूप है।

— ऐसा यथार्थरूप से मानते-मानते ही सम्पूर्ण दुःख का अभाव हो जात है। विश्व में किसी का भी त्रिकाल में अभाव नहीं है। यदि अपने को अजीवतत्त्व से भिन्न जान लिया तो सादि-अनन्त सुखी हो जावेगा, यदि अजीवतत्त्व में जैसा अपनापना अनादि से मानता रहा है — ऐसा ही मानता रहा तो अनादि -अनन्त तेली के बैल की तरह घूमता रहेगा। **हे जीव! सावधान! ऐसा अवसर फिर नहीं मिलेगा। अब परमपूज्य श्री कानजीस्वामी की कृपा से यह अवसार आया है। सावधान! सावधान!!**

दिनाँक 1-12-93

प्रश्न- आत्मा कैसा है?

उत्तर- (1) यथार्थरूप से आत्मा, शरीरादि से सर्वथा भिन्न, निज स्वभावों से अभिन्न, स्वयं सिद्ध वस्तु है।

(2) अमूर्तिक प्रदेशों का पुञ्ज, प्रसिद्ध ज्ञानादि गुणों का धारी, अनादि-निधन, वस्तु स्व है।

(3) चाहे जीव, निगोद में पड़ा हो या सिद्धालय में हो — उस त्रिकाली भगवान में जरा भी अन्तर नहीं आता है,

प्रश्न- अन्तर किसमें में है?

उत्तर- (1) एक समय की पर्याय में अन्तर है। यदि एक समय यह जीव,

'अहो! मेरा सर्वज्ञपद प्रगट होने की शक्ति मुझमें वर्तमान ही विद्यमान है!' - इस प्रकार स्वभाव-सामर्थ्य की श्रद्धा करते ही वह अपूर्व श्रद्धा, जीव को बाह्य में उछलकूद करने से रोक देती है और उसके परिणमन को अन्तर्मुख कर देती है। स्वभावोन्मुख हुए बिना, सर्वज्ञत्वशक्ति की प्रतीति नहीं होती।

मङ्गल समर्पण

अजीवतत्त्व पर दृष्टि न दे तो भगवानपना पर्याय में प्रगट हो जाता है।

(2) कितना सरल है! सहजरूप है परन्तु अज्ञानी को विश्वास नहीं आता है।

(3) निज आत्मा के आश्रय से ही मिथ्यात्व का अभाव होकर क्रम से पूर्ण सुखी हो जाता है। अब सब अवसर आया है। सावधान! **– जय गुरुदेव!**

दिनाँक 1-12-93

जिसको जिस विधि से जहाँ रहना है, उसी प्रकार होगा – उसी प्रकार हो रहा है और उसी प्रकार हुआ है – इसमें जरा भी हेर-फेर करने को इन्द्र, जिनेन्द्र, तीर्थङ्कर भी समर्थ नहीं हैं परन्तु केवली के ज्ञान में आया, जब कोई विरला जीव ऐसा निर्णय करेगा, तब वह ज्ञानी हो जावेगा – सुखी हो जावेगा। जीव व्यर्थ में पागल बना फिरता है।

अपने को भूला, पर में अपनापना माना; अपनापना पर में ना माने तो तुरन्त भूल का अभाव हो जाता है, साक्षात् परमेश्वर ध्यान में आ जाता है।

— जय गुरुदेव!

...इसका तो कर्तव्य तो तत्त्व निर्णय का अभ्यास ही है; इसी से दर्शनमोह को उपशम तो स्वयमेव होता है, उसमें जीव का कर्तव्य कुछ नहीं है।

– आचार्यकल्प पण्डित टोडरमल

दिनाँक – 12-12-93

हे जीव! अभी निर्णय कर!

(1) द्रव्यकर्म, नोकर्म से तो किसी भी अपेक्षा तेरा सम्बन्ध नहीं है। तू ज्ञायक भगवान जीवतत्त्व है; अबन्धस्वभावी है। — ऐसा निर्णय करे।

राग-द्वेष का भाव, बन्धस्वभावी है।

तो प्रज्ञारूपी छैनी, तत्काल अबन्धस्वभावी पर पहुँच जाती है; बन्धस्वभावी राग-द्वेष भिन्न भासित होने लगता है, फिर अबन्धस्वभावी पर दृष्टि होने से, अस्थिरता का राग पर्याय में है, उसे अपना भासित होता ही नहीं, तो क्रम से मोक्ष की प्राप्ति हो जाती है — (1) अबन्धस्वभावी पर दृष्टि होने से; (2) अजीवतत्त्व ज्ञेय हो गया; (3) आस्रव-बन्ध हेय हो गया; (4) संवर-निर्जरा प्रगट करके योग्य उपादेय हो गया; सावधान होकर निज प्रज्ञा छैनी को अपनी ओर डालने से, सारे दु:खों का अभाव हो जाता है। **– जय गुरुदेव!**

दिनाँक 11-12-93

तू स्थाय निज को मोक्ष पथ में, ध्याय अनुभव तू उसे॥
उसमें ही नित्य विहार कर, न विहार कर परद्रव्य में॥412॥
इसमें सदा रतिवन्त बन, इसमें सदा संतुष्ट रे॥
इससे हि बन तू तृप्त, उत्तम सौख्य हो जिससे तुझे॥206॥
नहिं अप्रमत्त, प्रमत्त नहिं, जो एक ज्ञायक भाव है।
इस रीति शुद्ध कहाय अरु, जो ज्ञात, वो तो वो हि है॥6॥
व्यवहारनय अभूतार्थ दर्शित, शुद्धनय भूतार्थ है।
भूतार्थ आश्रित आत्मा, सद्‌दृष्टि निश्चय होय है॥11॥

मन्त्र है-मन्त्र है। सावधान!

दिनाँक 9-12-93

(1) निज अरूपी आत्मा का श्रद्धान - सम्यग्दर्शन

(2) निज अरूपी आत्मा का ज्ञान - सम्यग्ज्ञान

(3) निज अरूपी आत्मा का आचरण - सम्यक्‌चारित्र

A- जब तक अजीवतत्त्व में स्वप्न में भी अपनापना रहेगा, तब तक अरूपी निज आत्मा का अनुभव -ज्ञान-आचरण नहीं होगा।

B- निज अरूपी आत्मा का अनुभव होते ही '**सहः हि मुक्त एवं**' हो जाता है।

C- निज अरूपी आत्मा का अनुभव होते ही, द्रर्व्यकर्म, नोकर्म, भावकर्म में अपनेपने की बुद्धि का नाश हो जाता है।

D- निज अरूपी आत्मा का अनुभव होते ही, सारा जैनदर्शन हाथ पर आँवलें की तरह स्पष्ट हो जाता है।

E- निज अरूपी आत्मा का अनुभव होते ही, चौथे गुणस्थान में सिद्धदशा का यथार्थ ज्ञान हो जाता है और विश्व के मिथ्यादृष्टि क्यों दु:खी है ? उसका यथार्थ निर्णय हो जाता है।

— जय गुरुदेव! जय पूज्यश्री कानजीस्वामी! जय गुरुदेव!!

मुनिराज, समाधिपरिणत तो हैं परन्तु सनातन शुद्ध निज ज्ञायक द्रव्यसामान्य का अवलम्बन लेकर विशेष-विशेष समाधिसुख प्राप्त करने के लिये वे अति आतुर हैं। जैसे, पाँच लाख रुपये का स्वामी, पच्चीस लाख कमाने की भावना करता है; इसी प्रकार मुनिराज, निज ज्ञायक के उग्र अवलम्बन से प्रचुर समाधिसुख प्रगट करने के लिये अति उत्सुक हैं।

मङ्गल समर्पण

परद्रव्य का कर्ता-हर्ता होना तथा साक्षीभूत रहना, यह परस्पर विरुद्ध है। साक्षीभूत तो उसका नाम है, जो स्वयमेव जैसा हो, उसी प्रकार देखता-जानता रहे, परन्तु जो इष्ट-अनिष्ट मानकर किसी को उत्पन्न करे और नाश करे तो साक्षीभूत कैसे कहा जा सकता है? कभी नहीं।

- आचार्यकल्प पण्डित टोडरमल

दिनाँक 12-12-93

(1) जब तक सम्यग्दर्शन नहीं है, तब तक सारा विश्व मिथ्या अध्यवसाय में पागल है। निगोद से लगाकर, द्रव्यलिङ्गी मुनि तक सब मिथ्या अध्यवसाय में पागल है।

(2) द्रव्यकर्म, नोकर्म में एकत्वबुद्धि ही मिथ्या अध्यवसाय है।

(3) अज्ञानी के 24 घण्टों का कार्यक्रम, मिथ्या अध्यवसाय है।

(4) अज्ञानी ऐसा कहे मैं ज्ञायक भगवान आत्मा हूँ, मेरा कार्य ज्ञाता-दृष्टा है - यह सब मिथ्या अध्यवसाय है।

(5) सम्यग्दर्शन होते ही मिथ्या अध्यवसाय का अभाव हो जाता है।

प्रश्न- सम्यग्दर्शन कैसे हो?

उत्तर- मैं जीवतत्त्व हूँ; मैं अजीवतत्त्व नहीं हूँ — ऐसा यथार्थरूप से मानते ही सम्यग्दर्शन को प्राप्ति हो जाती है।

— जय गुरुदेव!

दिनाँक 13-12-93

विश्व में जड़-चेतन के जितने भी अनादि-अनन्त एक-एक समय के कार्य हैं, वे निश्चित व क्रमबद्ध ही हैं।

(1) कोई बीमार था, उसने दवाई खाकर या ऑपरेशन कराके ठीक करा लिया — ऐसा सर्वथा नहीं हैं। कहने में आता है; ऐसा है नहीं।

(2) किसी काल में, किसी प्रकार इच्छानुसार परिणमित होते देखकर, यह अज्ञानी जीव शरीर, पुत्रादिक में अहंकार-ममकार करता है — इसको यह ध्यान नहीं आता कि मैं साक्षात् ज्ञायक भगवान जीवतत्त्व हूँ, और अजीवतत्त्व से मेरा सर्वथा सम्बन्ध नहीं है।

(3) यदि यह ध्यान में आ जावे कि अजीवतत्त्व से सर्वथा सम्बन्ध नहीं है तो वहीं पर मोक्षमार्ग में आ गया।

(4) सब द्रव्य अपने-अपने स्वभावरूप परिणमित होते हैं, यह अज्ञानी व्यर्थ में ही कषायभाव से आकुलित होता है।

- जय गुरुदेव!

दिनाँक 14-12-93

वस्तु विचारत ध्यावतैं, मन पावें विश्राम।
रस स्वायत सुख ऊपजे, अनुभव याको नाम॥

प्रश्न — क्या विचार करे कि मन पावै विश्राम ?

उत्तर — (1) समयसार की तीसरी गाथा, (2) मोक्षशास्त्र में से 'सत् द्रव्य लक्षणम्' उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य युक्तं सत्' (3) प्रवचनसार में से 'पारमेश्वरी व्यवस्था' (4) आचार्यकल्प पण्डित टोडरमलजी का पृष्ठ 52 का महामन्त्र (5) प्रवचनसार, गाथा 93 का मर्म (6) कार्य का जन्मक्षण है, वही हुआ है, वही हो रहा है, और वही ही होगा।

(7) स्व-पर का यथार्थ भेदविज्ञान — अरे भाई! चारों अनुयोगों में वीतरागता के मन्त्र भरे पड़े हैं, जिसको जैनकुल व पूज्यश्री कानजीस्वामी का समागम मिला, वह पूछे क्या विचार करे कि मन पावै विश्राम, ऐसे अचम्भा है। सावधान! सावधान!

- जय गुरुदेव!

दिनाँक 14-12-93

(1) **जैनदर्शन में वीतरागता का मन्त्र ही भरे पड़े हैं — इसका ध्यान दिलानेवाले श्री परमपूज्य कानजीस्वामी ही मेरे ध्यान में आते हैं।**

(2) जैनदर्शन कहो — वीतरागता के मन्त्र कहो।

(3) मेरे पास जैनदर्शन के लिए शब्द नहीं।

(4) समयसार, प्रवचनसार, नियमसार, पञ्चास्तिकाय, मोक्षमार्ग-प्रकाशक तथा परमपूज्य श्री कानजीस्वामी के प्रवचनों में पन्ने-पन्ने पर अमृत की घूंट भरी-पड़ी हैं।

पञ्च काल में पूज्यश्री कानजीस्वामी ने साक्षात् सीमन्धर भगवान को लाकर बैठा दिया है। अरे जितने वीतरागता के मन्दिर हैं, वे सब 24 घण्टे वीतरागता ही बाँट रहे हैं। लेनेवाला हो तो ले ले — सावधान!

- जय गुरुदेव! पूज्य गुरुदेव!

अहा! आषाढ़ माह की घनघोर मेघ से भरपूर रात हो, जङ्गल में चारों ओर गहन अन्धकार व्याप्त हो परन्तु मुनिराज को अन्दर आत्मा में आत्मज्ञान में, आत्मानुभूति में प्रकाश व्याप्त हो गया है। अहा! जो चैतन्य की अनन्त शक्तियाँ हैं, उनमें से, अर्थात् उनके उग्र अवलम्बन से मुनिराज को प्रकाश का ज्वार आया है। बाहर में भले ही अन्धकार हो परन्तु अन्दर में उन्हें आत्मज्ञान का अनुपम प्रकाश फैल गया है।

मङ्गल समर्पण

दिनाँक 23-12-93

(1) वास्तव में अजीवतत्त्व को इस जीव ने स्पर्श ही नहीं किया; व्यर्थ में भ्रम से पागल बना फिरता है।

(2) मिथ्यादृष्टि या सम्यग्दृष्टि ने पर को छुआ ही नहीं, मात्र मिथ्यादृष्टि अपनी भूल से मानता है।

(3) पर में 'यह मैं' — यह संसार है; पर संसार नहीं, परन्तु पर में 'यह मैं' — ऐसी भ्रमबुद्धि ही संसार है।

(4) स्व में 'यह मैं' — यह मोक्ष है।

(5) जो जानता है, वह करता नहीं; जो करता है, वह जानता नहीं। जन्म-मरण एकला करे, स्वर्ग में एकला, मोक्ष में भी एकला — तो है जीव! पर में अपनेपने की मान्यता छोड़-छोड़!

- जय गुरुदेव!

कर्म के उदय से जीव को विकार होता है - यह मान्यता भ्रम-मूलक है। 'हे मित्र! ...परद्रव्य ने मेरा द्रव्य मलिन किया, जीव स्वयं ऐसा झूठा भ्रम करता है। ...तू उनका दोष जानता है, यह तेरा हरामजादीपना है।'

- पण्डित दीपचन्द कासलीवाल

दिनाँक 24-12-93

पण्डित कैलाशचन्द्र; उठना-बैठना, खाना-पीना, व्यापार करना, पाँचों इन्द्रियों के भोग-भोगना आदि सब कार्य, सर्वथा पुद्गल के हैं। जैसे कुत्ता, गाड़ी के नीचे चलने से मैं गाड़ी चलाता हूँ — ठहराता हूँ; तथा कुत्ता, हड्डी चबाने से पागल बना रहता है; उसी प्रकार मिथ्यादृष्टि 24 घण्टे शरीरादि कार्यों में, भोगने में पागल बना रहता है। वास्तव में द्रव्यकर्म-नोकर्म के कार्यों को मिथ्यादृष्टि या सम्यग्दृष्टि ने स्पर्श ही नहीं किया है। जीव जुदा, पुद्गल जुदा, परन्तु मिथ्यादृष्टि खोटी मान्यता से उनको उनके कार्यों को अपना मानता है।

यही तत्त्व का सार; अन्य कुछ व्याख्यान जो, सब या ही का विस्तार।

- जय गुरुदेव!

दिनाँक 25-12-93

(1) अनादि से व्यर्थ में दु:ख पाता है। शरीर को अपना ना माने तो मोक्षसुख का पता चले।

(2) स्वयं अकृत्रिम-चैत्यालय है, अपने अकृत्रिम-चैत्यालय को भूलकर, पर की सेवा में पागल बना रहता है।

(3) स्व-पर का यथार्थ श्रद्धान ही मोक्षमार्ग है। स्व-पर का झूठा श्रद्धान, निगोद का कारण है।

(4) निज को निज, पर को पर जान।

(5) पर क्या है ? निज आत्मा को छोड़कर, सब पर ही है।

— जय गुरुदेव!

दिनाँक 26-12-93

निज दर्शन ही श्रेष्ठ है, अन्य व किंचित मान;
हे योगी शिवहेतु ये, निश्चय से तू यह जान॥
गृहकार्य करते हुए, हेयाहेय का ज्ञान;
ध्यावे सदा जिनेश पद, शीघ्र लहे निर्वाण॥
जिन सुमरो निज चिन्तवो, जिन ध्यावो मन शुद्ध;
जो ध्यावत क्षण एक में, लहत परमपद शुद्ध॥

(1) निज आत्मा का अनुभव होते ही '**स:हि मुक्त एव**' का अनुभव बन जाता है।

(2) गृहकार्य करते हुए, अर्थात् क्या? गृहकार्य, अर्थात ज्ञानी का अस्थिरता सम्बन्धी विकल्प — जो हेय है — उसे गृहकार्य कहा है।

(3) एक निज आत्मा में जो लग जाता है, वह क्रम से शीघ्र मोक्षसुख को प्राप्त हो जाता है।

(4) हे जीव! तू है मोक्ष स्वरूप।

- जय गुरुदेव!

अहो! मुनिवर तो आत्मा के आनन्द में झूलते हैं। बारम्बार अन्तर में निर्विकल्प अनुभव करते हैं। बाह्य दृष्टि जीवों को उस मुनिदशा की कल्पना आना भी कठिन है। मुनि की बाह्यदशा तो बिलकुल नग्न दिगम्बर ही होती है तथा अन्तर में आत्मा की शान्ति का सागर उछलता है.... आनन्द का सागर उछलता है.... उपशमरस का ज्वार आया है। यद्यपि अभी महाव्रतादि की शुभवृत्ति उत्पन्न होती है, किन्तु उसे ज्ञानस्वभाव से भिन्न जानते हैं।

मङ्गल समर्पण

इसलिए बहुत कहने से क्या ? सर्वथा प्रकार कुदेव-कुगुरु-कुधर्म का त्यागी होना योग्य है। वर्तमान में (दिगम्बरधर्म में भी) इनकी प्रवृत्ति विशेष पायी जाती है; इसलिए उसे जानकर, मिथ्यात्वभाव को छोड़कर अपना कल्याण करो।

- आचार्यकल्प पण्डित टोडरमल

दिनाँक 1-1-94, सोनगढ़

क्या करे कि तुरन्त धर्म की प्राप्ति होवे ?

(1) प्रयोजनभूत सात तत्त्वों में तू जीवतत्त्व है; दूसरा सब अजीवतत्त्व है — इतना यथार्थ निर्णय होते ही आस्रव — बन्ध उत्पन्न नहीं होगें, संवर-निर्जरा प्रगट हो जावेगी, क्रम से मोक्ष होवेगा।

(2) सामान्य में से विशेष आता है — इतना ही निर्णय करना है।

(3) द्रव्यकर्म-नोकर्म का मिथ्यादृष्टि व सम्यग्दृष्टि से सर्वथा सम्बन्ध नहीं है, मात्र मिथ्यादृष्टि, द्रव्यकर्म-नोकर्म को अपना मानता है; ज्ञानी को अपनेपने का स्वप्न भी नहीं है।

(4) श्री मोक्षमार्गप्रकाशक, पृष्ठ 52 तथा पृष्ठ 306देखें।

(5) समयसार की तीसरी गाथा, प्रवचनसार की 93 वीं गाथा में साक्षात मोक्ष का निमन्त्रण है।

(6) पूज्य गुरुदेव व बहिनश्री मोक्ष का निमन्त्रण देकर चले गये। सावधान! सावधान! **- जय गुरुदेव!**

दिनाँक 1-1-94, सोनगढ़

पूज्यश्री कानजीस्वामी तथा बहिनश्री चम्पाबहिन-पञ्चम काल में तीर्थङ्कर-गणधर के समान —जैसा अनादि से तीर्थङ्करों-गणधरों ने कहा है — वर्तमान में सीमन्धर भगवान आदि कह रहे हैं, भविष्य में बतलायेंगे, उसी बात को सोनगढ़ के सन्त श्री कानजीस्वामी और बहिन श्री चम्पाबहिन-तीर्थङ्करों के समान-गणधरों के समान कहकर चले गये।

पञ्चम काल में पूज्य गुरुदेवश्री, बहिनश्री का होना एक अचम्भा है।

—ऐसा होने पर, ऐसा योग बनने पर भी, पूज्य श्री कानजीस्वामी व बहिनश्री चम्पाबहिन का तीर्थङ्कर-गणधर जैसा योग बनने पर भी, मुझे वर्तमान में पात्र जीव दिखायी नहीं देता। अरे! क्या हो गया —यह भी अचम्भा है। **- जय गुरुदेव!**

दिनाँक 1-1-94, सोनगढ़

बाद में क्या करना ?

(1) कुन्दकुन्द भगवान का मोक्षपाहुड़, गाथा 31 — अमृतचन्द्राचार्य का कलश 173 समयसार, गाथा 56 की टीका-बारहवीं गाथा - में सारे विश्व को, अर्थात् संज्ञी पञ्चेन्द्रिय को इतना ज्ञान का उघाड़ है कि वह ऊपर कहे अनुसार श्रद्धान-ज्ञान करें तो मोक्ष का पथिक बन जावें।

(2) **मैंने आज पूज्य गुरुदेव व बहिनश्री की समाधिनगरी में आकर देखा, उनके बताये हुये बात का लोप सा होता जा रहा है — आज जो बाकी है, वह सोनगढ़ के अलावा कहीं उसका स्वप्न भी नहीं है। सावधान! सावधान!**

- जय गुरुदेव!

दिनाँक 1-1-94, सोनगढ़

(1) वर्तमान में चारों अनुयोगों में मात्र वीतरागता का ही दर्शन देखने को मिलता है।

(2) विशेषरूप पात्र जीवों के लिये समयसार, प्रवचनसार, नियमसार, मोक्षमार्गप्रकाशक; पूज्यश्री कानजीस्वामी के प्रवचन रत्नाकर आदि समस्त प्रवचन, चारों गतियों के अभाव ये निमित्त (साक्षात निमित्त) हो सकते हैं, परन्तु एक बार जिसने साक्षात् ज्ञानियों के मुख से सुनकर धारणा की हो।

(3) **उसी के अनुसार बहिन श्री के वचनामृत आदि हैं - धन्य हैं! जिन्हें ऐसा योग बनने पर भी खाली रहे जावे, आश्चर्य है!**

- जय गुरुदेव!

अहा! मुनिराज को बहुत शुद्धता तो हुई है परन्तु अभी किञ्चित् कषायकण से परिणमन में मलिनता है, वह सुहाती नहीं है; इसलिए उसका नाश करके पूर्ण शुद्धता की भावना है और वह पूर्ण शुद्धता मेरे शुद्ध चिन्मात्रस्वभाव के घोलन से ही होगी - ऐसा भान है। विकल्प का तो नाश करना चाहते हैं, तब वह विकल्प, शुद्धता का साधन कैसे हो सकता है ? शुद्धता का साधन, विकल्प नहीं होता; शुद्धस्वभाव की घोलन ही शुद्धता का साधन है।

मङ्गल समर्पण

मङ्गल समर्पण

दिनाँक 1-1-94, सोनगढ़

(1) हे परमपूज्य कानजीस्वामी! आप मेरे लिये तीर्थङ्करों से भी बड़े हो; मैं आपका उपकार भूल नहीं सकता। आपने साक्षात् पञ्चम काल को चौथा काल, भरतक्षेत्र को विदेहक्षेत्र बनाया।

(2) आज 70 वर्षों में पूज्य गुरुदेव, बहिनश्री न होते तो जैनधर्म का लोप हो गया होता — अतः अन्तसः मैं पूज्यश्री कानजीस्वामी को तीर्थङ्कर के रूप में, बहिनश्री चम्पाबेन को गणधर के रूप में नमस्कार करता हुआ, अपने को धन्य मान रहा हूँ।

धन्य हो– पूज्य गुरुदेव! धन्य हो बहिन श्री चम्पाबेन!! **– जय गुरुदेव!**

दिनाँक 1-1-94

(1) हे जीव! तू साक्षात अकृत्रिम चैत्यालय है — इसका निर्णय कर।

(2) तू साक्षात् परमात्मा है, तेरे परमात्मा के अलावा तेरे लिये दूसरा परमात्मा है ही नहीं।

(3) चारों अनुयोगों के मङ्गलाचरणों में मात्र वीतरागता का ही दर्शन होता है।

(4) केवलज्ञानी के केवलज्ञान को माने, मोक्ष का पथिक न बने – ऐसा बने नहीं।

(5) वस्तुस्वरूप को माने तो बेड़ा पार हो जावे।

पात्र जीवों को द्रव्य-गुण-पर्याय का सूक्ष्म रीति से निर्णय करना चाहिए।

वर्तमान में तीर्थङ्करों के समान प्रवचनकार पूज्य गुरुदेव ही थे – उन जैसा (पूज्य गुरुदेव जैसा) साक्षात मोक्ष का वर्णन करनेवाला, तथा सब अनुयोगों को थोड़े में लिखने का कार्य आचार्यकल्प पण्डित टोडरमलजी ने किया है।

धन्य है! धन्य है!! **– जय गुरुदेव!**

सर्व प्रकार के मिथ्यात्वभाव को छोड़कर सम्यग्दृष्टि होना योग्य है। संसार का मूल, मिथ्यात्व है। मिथ्यात्व के समान अन्य पाप नहीं है। मिथ्यात्व का अभाव होने पर शीघ्र ही मोक्ष पद को प्राप्त करता है; इसलिए जिस तिस प्रकार से सर्व प्रकार से मिथ्यात्व का नाश करना योग्य है।

– आचार्यकल्प पण्डित टोडरमल

दिनाँक 2-1-94

(1) आज सारा विश्व शरीरादि अजीवतत्त्व को अपना मानकर धर्म की बातें करता है; अत: जो शरीर को अपना मानकर धर्म की बातें करता है, उसे कभी धर्म की प्राप्ति नहीं होगी।

(2) तू अजीवतत्त्व नहीं; जीवतत्त्व है, इतना निर्णय कर तो बेड़ा पार हो जावे।

(3) देखो, तत्त्व विचार की महिमा! क्षणभर में अपने परमात्मा को जान जाता है।

(4) तत्त्वविचार न करें — शास्त्रादि पढ़ें, माला जपें, व्रतादि पाले तो भी सम्यक्त्व का अधिकारी नहीं है।

(5) समस्त जिन-जिनवर-जिनवर वृषभों को आदेश है कि जब यह जीव, स्व-पर को यथार्थ जानेगा, तभी '**सहि मुक्त एव**' बन। जावेगा।

- जय गुरुदेव!

दिनाँक 5-1-94, अलीगढ़

(1) **हे परम पूज्यश्री कानजीस्वामी! आपके चरणों में अगणित नमस्कार।**

(2) अब मेरा भाव, मुमुक्षुओं के बीच में जाने का है क्योंकि हार्ट के ऑपरेशन को तीन साल हो चुके हैं -

(3) आप मुझे आदेश दीजियेगा वैसा ही होगा-

(4) प्रचारार्थ जाओ, — अब किताबों के छपाने आदि में मत पड़ना — सबको प्रेम से समझाओं और प्रेम से मोक्ष में जावो —

तू है मोक्षस्वरूप; तू है (सर्व जीव) है सिद्धसम; जो समझे सो थाय। जो आज नहीं समझा तो फिर क्या समझेगा - सावधान! सावधान!!

- जय गुरुदेव!

निश्चय से देखा जाए तो ध्रुव चिदानन्द आत्मा, ज्ञान-आनन्दादि अनन्त-अनन्त गुणों की खान है। यह वास्तव में चिन्तामणि, कल्पवृक्ष, कामधेनु, कामकुम्भ, सिद्धरस, महामन्त्रादि सब कुछ है। यह सब वास्तव में आत्मा को ही लागू पड़ता है। ऐसी पहिचान जिसे होती है, उसके संसार का अल्प काल में ही अभाव हो जाता है और उसे मुक्तावस्था की प्राप्ति होती है।

दिनाँक 5-1-94

प्रश्न- विश्व में पात्र कहलानेवाले ही धर्म की प्राप्ति का प्रयत्न करते हैं, उन्हें धर्म की प्राप्ति क्यों नहीं होती ?

उत्तर- A- वे उन्हें रास्ते चलते हैं। धर्म आसान है, सहजरूप है, आनन्दरूप है।

B- जीव जुदा, पुद्गल जुदा - यही तत्त्व संक्षेप।

C- वे स्व-पर का भेदविज्ञान नहीं करते, परन्तु शरीरादि की क्रिया में मसगूल रहते हैं — कोई निश्चयाभासी, कोई व्यवहराभासी और कोई उभयाभासी नाम धराकर निगोद चले जाते हैं। अरे भाई! तू साक्षात भगवान है; तेरे भगवान से विश्व के अजीवतत्त्व का सर्वथा सम्बन्ध नहीं हैं — इतना निर्णय कर तो तू तुरन्त मोक्षमार्ग में प्रवेश करेगा।

- जय गुरुदेव!

दिनाँक 5-1-94

'तास ज्ञान को कारण, स्व-पर विवेक बखानो, कोटि उपाय बनाय, भव्य ताकौं उर आनो।'

अनादि से विश्व के ज्ञानियों का एक ही मत है — जब यह जीव, स्व-पर का विवेक करेगा, तभी सुखी हो जावेगा।

अरे, संसार के जीवों!

आज अभी ही निर्णय करो कि तुम जीवतत्त्व हो; अजीवतत्त्व नहीं हो — इतना निर्णय होते ही आस्रव-बन्ध का भागना शुरु हो जावेगा। उसी समय संवर - निर्जरा की प्राप्ति होकर, क्रम से मोक्ष की प्राप्ति होवेगी। यही एकमात्र धर्म की प्राप्ति की क्रिया है।

तातैं जिनवर कथित, तत्त्व अभ्यास करीजै।
संशय विभ्रम मोह त्याग, आपौ लख लीजै॥
यदि यह निर्णय ना किया तो धिक्कार!!

- जय गुरुदेव!

मोक्षमार्ग में पहला उपाय आगमज्ञान कहा है; आगमज्ञान बिना धर्म का साधन नहीं हो सकता; इसलिए तुम्हें भी यथार्थ बुद्धि द्वारा आगम का अभ्यास करना। तुम्हारा परम कल्याण होगा।

- आचार्यकल्प पण्डित टोडरमल

दिनाँक 10-1-94, बुलन्दशहर

स्व में बस, पर से खस, आयेगा आत्मा में अतीन्द्रिय रस, यही है अध्यात्म का कस —इतना करो तो बस।

(1) **आज 70 वर्षों में पूज्यश्री कानजीस्वामीजी मेरे लिये तीर्थङ्करों के समान हैं — मेरे पास उनके स्वागत के लिये शब्द नहीं हैं।**

(2) **जिसको पूज्य गुरुदेव का निमित्त मिला और न समझा, तो जीवन व्यर्थ है।**

(3) बात जरा सी है — अपने को भूला, पर में अपनापना माना ।

(4) निज जीवतत्त्व से अजीवतत्त्व का सर्वथा सम्बन्ध नहीं है।

(5) जिनप्रतिमा, जिनसारखी — जिनप्रतिमा और साक्षात् समवसरण में अन्तर नहीं है।

(6) जय समयसार-नियमसार-प्रवचनसार!

- जय गुरुदेव!

दिनाँक 11-1-94 बुलन्दशहर

प्रश्न- विश्व में सर्व पदार्थ कायम रहकर बदलते रहते हैं — किसी का जन्म-मरण होता ही नहीं, यह अज्ञानी व्यर्थ में ही पागल बना फिरता है। यह पागलपन का कैसे अभाव हो ?

उत्तर- (1) तू जीवतत्त्व है; अजीवतत्त्व नहीं है; अजीवतत्त्व से तेरा सर्वथा सम्बन्ध नहीं है क्योंकि प्रत्येक पदार्थ कायम रहकर बदलना उसका स्वभाव है — यह पारमेश्वरी व्यवस्था है। इस व्यवस्था को जानते-मानते ही अपना परमेश्वरपना प्रगट पर्याय में आ जाता है।

(2) विश्व में प्रत्येक आत्मा, भगवान ही दिखता है क्योंकि प्रत्येक जीव, अमूर्तिक प्रदेशों का पुँज, प्रसिद्ध ज्ञानादिगुणों का धारक, अनादि-अनन्त वस्तु है।

प्रत्येक द्रव्य की पर्याय का जो जन्मक्षण है, उसी जन्मक्षण में होती है, हो रही है — तू भगवान है, तू भगवान है।

सावधान! सावधान!

- जय गुरुदेव!

लोग कहते हैं कि भगवान ने जैसा देखा होगा, उसी प्रकार सब होगा, हम क्या कर सकते हैं ? भगवान ने अपने जितने भव देखे होंगे, उतने भव तो होंगे ही, किन्तु यहाँ तो कहते हैं कि जिसके ज्ञान में भगवान विराजमान हैं, उसके अनन्त भव हो ही नहीं सकते। तीन लोक व तीन काल के ज्ञाता भगवान जिस भक्त के ज्ञान में विराजमान हैं, उसके भव की भीड़ होती ही नहीं।

मङ्गल समर्पण

हे भव्य! इतना ही सत्य कल्याण (आत्मा) है, जितना यह ज्ञान है – ऐसा निश्चय करके, ज्ञानमात्र से ही सदा ही रति प्राप्त कर, इससे तुझे वचन अगोचर ऐसा सुख प्राप्त होगा और उस सुख को उसी क्षण तू ही स्वयमेव देखेगा; दूसरों से पूछना नहीं पड़ेगा।

– आचार्य कुन्दकुन्द

दिनाँक 12-1-94

(1) जैनकुल, दिगम्बर धर्म, पूज्यश्री कानजीस्वामी का समागम मिलते ही — आत्मलाभ होना, यह पञ्चम काल में अद्‌भुत योग है। यदि यह अवसर खो दिया तो पुरानी जगह चला गया – सावधान! सावधान!

(2) अरे! मुझे तो कोई विश्व में पागल दिखता ही नहीं एवं सब साक्षात् परमेश्वर हैं — स्त्री-पुरुषादि यह निमित्त की अपेक्षा कथन किया जाता है।

(3) समयसार, नियमसार, प्रवचनसार के मर्मज्ञ श्री टोडरमलजी ने सर्व ग्रन्थों का सार (असली अतीन्द्रिय मक्खन) मोक्षमार्गप्रकाशक में भर दिया हैं।

(4) पूज्यश्री कानजीस्वामी ने सोनगढ़ तीर्थधाम से 45 वर्षों में एक-एक समय करके मोक्षमार्ग / मोक्ष का सिंहनाद किया है, उसे सुनकर जीव, मोक्षमार्ग को प्राप्त हुए हैं। धन्य-धन्य हैं, जिन्हें गुरुदेव का योग बना।

(5) गुरुदेव का योग किसको कहलाया जावेगा? जिसने प्रगट आत्मस्वभाव का साक्षात् किया है, उसको।

(6) यह कार्य आसान है – सहजरूप है।

(7) जैसे, सिंह का नाद सुनकर जंगल के जानवर भयभीत होकर भागने लगते हैं, उसी प्रकार वास्तव में जिसने पूज्य श्री कानजीस्वामी का सिंहनाद सुना है – समझा है, उसके मिथ्यात्व रहता ही नहीं। यदि मिथ्यात्व रहता है, उसने सुना ही नहीं।

(8) मेरे विचार में 45 वर्षों में, अनादि से अनन्त तीर्थङ्करों का सिंहनाद पूज्य गुरुदेव ने बहाया — जिसको वह भाया — उसने पाया — वह अमर बन गया।

(9) जैसे केवलज्ञानी विश्व के साक्षी हैं। अरे भाई! वैसे ही सम्यग्दृष्टि में विश्व के साक्षी हैं — अरे! यह बात अज्ञानी को कैसे जचें — यदि जँच जाये तो ज्ञानी बन जावे।

स्वभाव से एकत्व और राग से विभक्त — ऐसा शुद्धस्वरूप भगवान आत्मा है — वह अनादि-अनन्त है, स्पष्ट प्रकाशमान है — संसार अवस्था में पर्याय में विकार होने पर भी ज्ञायकभाव ऐसा का ऐसा पड़ा है —

अरे जीव! तू एक समय शरीर को अपना न माने तो आत्मा तुझे अनुभव में आवे —

ज्ञायकभाव है, वह अप्रमत्त भी नहीं और प्रमत्त भी नहीं। इस प्रकार से उसे शुद्ध कहा है।

(A) स्वयं जो शुद्ध है, वह पर से भिन्न, स्व से अभिन्न है। वह शुभाशुभरूप कभी हुआ ही नहीं; जो ज्ञायकभाव है, वह ज्ञानियों को ज्ञान का ज्ञेय है; अज्ञानियों को भी है परन्तु वे मानते-जानते नहीं, उन्हें देव-गुरु-धर्म का विश्वास नहीं है। समयसार की छठवीं गाथा का मर्म समझ जावे तो मोक्ष हो गया।

– जय गुरुदेव!

दिनाँक 12-1-94

प्रश्न– ज्ञायकभाव कैसा है ?

उत्तर– ज्ञायकभाव, अमूर्तिक प्रदेशों का पुञ्ज, प्रसिद्ध ज्ञानादि गुणों का धारी, अनादि-अनन्त वस्तु है। वह नौ प्रकार के पक्षों से रहित है।

प्रश्न– जीव, अनादि से पागल क्यों है ?

उत्तर– निगोद से लगाकर, द्रव्यलिङ्गी मुनि तक नौ प्रकार के पक्षों में पागल है और नौ प्रकार के पक्षों में पागल बने रहने के कारण, अनन्त बार निगोद गये।

प्रश्न– अब क्या करें ?

उत्तर– तू ज्ञायक, अमूर्तिक प्रदेशों का पुञ्ज, प्रसिद्ध ज्ञानादि गुणों का धारी, अनादि-अनन्त भगवान है; तेरा नौ प्रकार के पक्षों से सर्वथा सम्बन्ध नहीं है तथा ज्ञायक भगवान में नौ प्रकार के पक्षों का प्रवेश ही नहीं है।

— ऐसा मानते ही मोक्षमार्ग खुल गया और मोक्ष हो गया। सावधान! सावधान! नौ प्रकार का पक्ष पर्याय में होने पर भी, ज्ञायकभाव उसरूप हुआ ही नहीं।

केवलज्ञान की एक समय की पर्याय की कितनी सामर्थ्य है, उसका विचार करने से विकल्प का अभाव होकर निर्विकल्पता हो जाती है। विकल्पातीत चैतन्य की अपार महिमा है। जिस ज्ञान में अपनी सामर्थ्य की प्रतीति आती है, वह ज्ञान, अल्प काल में केवलज्ञानरूप परिणत हो जाता है। वर्तमान में भले ही अल्प भावश्रुतज्ञान हो, तथापि उसकी प्रतीति में अनन्त ज्ञान का माहात्म्य स्थापित हो जाता है।

मङ्गल समर्पण

संसार अवस्था में पुण्य के उदय से इन्द्र-अहमिन्द्रादि पद प्राप्त करे, तो भी निराकुलता नहीं होती; दुःखी ही रहता है; इसलिए संसार अवस्था हितकारी नहीं है।

- आचार्यकल्प पण्डित टोडरमल

दिनाँक 12-1-94

प्रश्न- ज्ञायकभाव कैसा है ?

उत्तर- ज्ञायकभाव, अमूर्तिक प्रदेशों का पुञ्ज, प्रसिद्ध ज्ञानादि गुणों का धारी, अनादि-अनन्त वस्तु है। वह नौ प्रकार के पक्षों से रहित है।

प्रश्न- जीव, अनादि से पागल क्यों है ?

उत्तर- निगोद से लगाकर, द्रव्यलिङ्गी मुनि तक नौ प्रकार के पक्षों में पागल है और नौ प्रकार के पक्षों में पागल बने रहने के कारण, अनन्त बार निगोद गये।

प्रश्न- अब क्या करें ?

उत्तर- तू ज्ञायक, अमूर्तिक प्रदेशों का पुञ्ज, प्रसिद्ध ज्ञानादि गुणों का धारी, अनादि-अनन्त भगवान है; तेरा नौ प्रकार के पक्षों से सर्वथा सम्बन्ध नहीं है तथा ज्ञायक भगवान में नौ प्रकार के पक्षों का प्रवेश ही नहीं है।

— ऐसा मानते ही मोक्षमार्ग खुल गया और मोक्ष हो गया। सावधान! सावधान! नौ प्रकार का पक्ष पर्याय में होने पर भी, ज्ञायकभाव उसरूप हुआ ही नहीं।

प्रश्न- क्या नौ प्रकार का पक्ष है ही नहीं ?

उत्तर- है, परन्तु ज्ञायक में नहीं है। एक बार हाँ तो कर, फिर देख क्या होता है ?

प्रश्न- ज्ञायकभाव नौ प्रकार के पक्षों से रहित है, इसका बतलानेवाला साक्षात् आपने देखा है ?

उत्तर- हाँ देखा है, परम पूज्यश्री कानजीस्वामी, जिन्होंने 45 वर्षों में भरतक्षेत्र को विदेहक्षेत्र, पञ्चम काल को चौथा कार्य बनाया है, वे मेरे गुरु थे।

उन्होंने जो अनादि से तीर्थङ्करों ने, गणधरों ने ज्ञायकभाव को जाता है, बताया है, वैसा ही बताकर चले गये। ज्ञायकभाव को साक्षात बतलानेवाला समयसार अलौकिक ग्रन्थ है — उसी समयसार का मर्म पूज्य गुरुदेव कहकर चले गये।

धन्य है, जिन्होंने पूज्य गुरुदेव को पहिचाना। - जय गुरुदेव!

प्रश्न– ज्ञायकभाव कैसा है ?

उत्तर– 1) ज्ञायकभाव, नौ प्रकार के पक्षों से सर्वथा भिन्न और ज्ञान–दर्शनादि गुणों से अभिन्न, स्वयं सिद्ध वस्तु है। (पण्डित टोडरमलजी)

2) ज्ञायकस्वभाव पर दृष्टि पड़ते ही ज्ञानी हो जाता है।

3) ज्ञायकस्वभाव के आश्रय से ही धर्म की शुरुआत, वृद्धि और पूर्णता होती है।

4) अमूर्तिक प्रदेशों का पुञ्ज, प्रसिद्ध ज्ञानादि गुणों का धारी, अनादि–निधन वस्तु, ज्ञायकभाव है।

5) ज्ञायकभाव कहो – पारिणामिकभाव कहो, साक्षात् भगवान कहो – एक ही बात है।

6) उस ज्ञायक में क्षायिक आदि चार भाव भी नहीं हैं।

7) नौ प्रकार के पक्षों को छोड़कर, जो ज्ञायक का आश्रय लेता है, वह उसी समय ज्ञानी बन जाता है, उसकी दृष्टि ज्ञायक पर ही रहती है।

– जय गुरुदेव!

दिनाँक 13–1–94, बुलन्दशहर

प्रश्न– आपने सब से प्रथम किसका ज्ञायकभाव देखा ?

उत्तर– सबसे प्रथम 1956में दशलक्षणपर्व के 2 दिन पहले अपने स्वयं के ज्ञायकभाव का साक्षात्कार हुआ और अगर उसमें निमित्त पूज्यश्री कानजीस्वामी हुए।

प्रश्न– अपने ज्ञायकस्वभाव को जानने से क्या हुआ ?

उत्तर– A- आज तक चौथे गुणस्थान से लेकर, सिद्धदशा तक के ज्ञायकभाव का पता चल गया और ये सब सुखी हैं, अतीन्द्रिय आनन्द की घूँट पीते हैं।

हे भगवान! जिसे आप प्राप्त हुए हैं, जिसे आपके प्रति भक्ति है, आपके द्वारा प्रतिपादित आत्मा की बात को जो रुचिपूर्वक सुनता है, वह जीव, सम्यक्त्व के सन्मुख हुआ है, वह अल्प काल में आत्मानुभव करेगा ही; अत: वह जीव भी कम बुद्धिवाला नहीं है। गृहीतमिथ्यादृष्टि की अपेक्षा तो वह जीव भी बहुत आगे है। भले ही वर्तमान में उसे आत्मानुभव नहीं है, तथापि वह अनुभव की तैयारीवाला है; अत: वह जीव भी बहुत उत्कृष्ट है।

B- निगोद से लगाकर, विश्व के मिथ्यादृष्टियों को भी यह स्पष्ट प्रकाशमान है, परन्तु वे सब उसका अनादर कर रहे हैं।

C- विश्व में जितने जीव हैं, उतने ज्ञायकभाव है — यह स्पष्ट जान लिया।

दिनाँक 13-1-94, बुलन्दशहर

प्रश्न- विश्व में ज्ञायकभाव असंख्यात प्रदेशी कितने हैं?

उत्तर- प्रत्येक जीव असंख्यात प्रदेशी क्षेत्र में रहता है; अत: जितने विश्व में असंख्यात प्रदेशी जीव हैं, उतने ही ज्ञायकभाव है?

प्रश्न- ज्ञायकभाव कैसा है?

उत्तर- (1) अनादि-अनन्त सत्तास्वरूप है। (2) नित्य प्रकाशमान है। (3) स्पष्ट प्रतिभासरूप है। (4) संसार अवस्थाओं में शुभाशुभभावरूप परिणमता हुआ होने पर भी, स्वभावदृष्टि से देखने में आवे तो, ज्ञायकभाव, शुभाशुभभावोंरूप परिणमा ही नहीं। (5) समस्त परद्रव्यों और उनके भावों से भिन्नरूप से उपासने में आने पर, ज्ञायकभाव शुद्ध कहलाता है। (6) अन्तरङ्ग में ज्ञेयाकाररूप से परिणमता होने पर भी, ज्ञेयपदार्थों के साथ ज्ञायकभाव का वास्तव में कोई सम्बन्ध नहीं है।

प्रश्न- ज्ञायक के आश्रय से क्या-क्या होता है?

उत्तर- सम्यग्दर्शन से लेकर सिद्धदशा तक की प्राप्ति, एक निज ज्ञायक के आश्रय से ही होती है। *(श्री समयसार, गाथा 6 का सार)*

- जय गुरुदेव!

मोक्ष अवस्था में किसी प्रकार की आकुलता नहीं रही; इसलिए आकुलता मिटाने का उपाय करने का भी प्रयोजन नहीं है। सदा काल शान्तरस से सुखी रहते हैं; इसलिए मोक्ष अवस्था ही हितकारी है।

- आचार्यकल्प पण्डित टोडरमल

दिनाँक - 16-1-1994

(1) ज्ञानियों को छोड़कर, आज सारा विश्व, अजीवतत्त्व को ही स्वयं मानता है और अजीव के कार्यों को ही अपना मानता है — इस प्रकार दु:खी होता हुआ निगोद में चला जाता है।

(2) स्वयं जीवतत्त्व है, अजीवतत्त्व से सर्वथा सम्बन्ध नहीं है, इतना मानते ही मोक्षमार्ग शुरु हो जाता है।

(3) अजीवतत्त्व में स्वप्न में भी अपनेपने की मान्यता रहेगीं, तब तक सम्यग्दर्शन प्राप्त नहीं होगा।

(4) सारे शास्त्रों का सार, तू जीवतत्त्व है; नास्ति से — अजीवतत्त्व नहीं है — इतना यथार्थ निर्णय होते ही वीतरागता की शुरुआत हो जाती है।

- जय गुरुदेव!

दिनाँक 18-1-1994

(1) यह जीव, व्यर्थ में भटक रहा है, अपने को अजीवतत्त्व मानकर।

(2) जबकि जीवतत्त्व ने अजीवतत्त्व को स्पर्श किया ही नहीं।

(3) प्रत्येक द्रव्य, अपने-अपने गुण-पर्यायों को ही स्पर्श करता है, करता रहा है, करता रहेगा —यह निश्चित है।

(4) परम पूज्यश्री कानजीस्वामी का योग एक अचम्भा है, उन्होंने पञ्चम काल में मुक्ति का मार्ग खोल दिया और पञ्चम काल को चौथा काल बनाया।

(5) हे पूज्य गुरुदेव! आप मेरे लिये महान से महान हैं।

(6) कितना सरल सच्चा मोक्षमार्ग है — तू जीवतत्त्व है! — एक बार मान तो सही!

(7) तू अजीवतत्त्व नहीं है। अजीवतत्त्व को अपना मानेगा, सीधे निगोद जावेगा और अपने को जीवतत्त्व मानेगा, मोक्ष में जावेगा।

- जय गुरुदेव!

मुनिवरों की परिणति एकदम अन्तरस्वभाव में ढल गयी है; इसलिए जगत की ओर से वे अत्यन्त उदासीन हो गये हैं। जैसे, बीस वर्ष के इकलौते पुत्र की मृत्यु पर उसकी माता अत्यन्त उदास-उदास हो जाती है; उसी प्रकार जिनका मोह मर गया है - ऐसे मुनिवर, संसार से एकदम उदासीन हो गये हैं। दृष्टान्त में माता की उदासीनता तो मोहकृत है, जबकि मुनिवरों की उदासीनता तो निर्ममत्व के कारण है। माता, पुत्र प्रेम के कारण उदास हुई है तो मुनि, चैतन्य के प्रेम के कारण संसार से उदासीन हुए हैं।

मङ्गल समर्पण

दिनाँक 20-1-94

(1) मृत्यु तो एक बार होनी ही है; इसलिये देह का लक्ष्य छोड़कर, अमृतस्वरूप निज आत्मा पर दृष्टि कर।

(2) भाई! शरीर तुम्हारा कहा नहीं मानता तो शरीर के प्रति प्रेम क्यों करते हो?

(3) शरीर, अचेतन-पुद्गलों का पिण्ड है; मैं इसका कर्ता या आधार नहीं, मुझे इसका पक्षपात नहीं; इसका जैसा होना होवे, होओ — मैं तो अपने में मध्यस्थ हूँ।

(4) मरण समय जिन्दगी के अभ्यास का नमूना आता है। यदि उस समय भेदज्ञानपूर्वक-आत्मा की भावनापूर्वक, शान्ति से देह छोड़े तो होशियारपना है।

(5) शरीर में कैसा भी हो, उसके ऊपर दृष्टि न देकर, निज ज्ञानानन्द -स्वरूप का लक्ष्य करना। भेदज्ञान की भावना रखना, स्वसत्तावालम्बी उपयोग आत्मा का स्वरूप है — उसका विचार कर (1) मैं तो ज्ञायक हूँ — ऐसी श्रद्धा से ज्ञानी व्रजपात होने पर भी डिगता नहीं और निज स्वरूप की श्रद्धा छोड़ता नहीं। शरीर में कुछ भी होवे, परन्तु आत्मा की भावना रखना- **- पूज्य गुरुदेव!**

दिनाँक - 23-1-94

(1) शरीर का योग होने पर भी, शरीर से भिन्न दृष्टि, मोक्षमार्ग है।

(2) शरीर से भिन्न-दृष्टि अन्तरात्मा है, वह मोक्ष के नजदीक जा रहा है।

(3) देह से भिन्न दृष्टिवन्त का समस्त ज्ञानी, आदर करते हैं।

(4) प्रवचनसार 1 से 5 गाथा तक दृष्टिवन्त जीव, सब परमेष्ठियों को अलग-अलग व एक साथ नमस्कार करता है।

(5) धन्य है जिसे देह होने पर भी, देह-दृष्टि नहीं है, अर्थात् आत्मा पर दृष्टि है! उसने करने योग्य सब कर लिया — उसका मनुष्यपना सार्थक हो गया — मनुष्यपना का अर्थ क्या? मैं जीवतत्त्व हूँ; अजीवतत्त्व नहीं — ऐसा यथार्थ श्रद्धान होते ही, आस्रव-बन्ध भागना शुरु हो गये; संवर-निर्जरा की प्राप्ति होकर, मोक्ष के नजदीक जा रहा है।

(6) जिसने देह को ही मनुष्य जन्म माना, वह निगोद की ओर जा रहा है।

- जय गुरुदेव!

वास्तव में रागादि भावों का प्रगट न होना, यह अहिंसा है और उन्हीं रागादि भावों की उत्पत्ति होना, हिंसा है - यही जैन सिद्धान्त का संक्षिप्त रहस्य है।

- आचार्य अमृतचन्द्र

दिनाँक - 25-1-94

प्रत्येक द्रव्य-गुण अनादि-अनन्त कायम रहता हुआ, एक पर्याय का उत्पाद — एक पर्याय का व्यय-करता रहा है-कर रहा है और करता रहेगा — यह महामन्त्र है।

इस मन्त्र का यथार्थरूप से ध्यान आते ही संसार का अभाव, मोक्षमार्ग की शुरुआत, फिर क्रम से मोक्ष की प्राप्ति होती है।

वस्तु विचारत ध्यावतें, मन पामें विश्राम; रस स्वादत सुख उपजै, अनुभव याकौ नाम॥ अनुभव चिन्तामणि रतन, अनुभव है रसकूप; अनुभव मारग मोक्ष को, अनुभव मोक्षस्वरूप ।

जय गुरुदेव - जय गुरुदेव

दिनाँक 26-1-94, बुधवार

प्रश्न - अनादि से यह जीव चारों गतियों में क्यों दु:खी हो रहा है ?

उत्तर - एकमात्र अजीवतत्त्व को अपना-मानने के कारण ही —

धन समाज गज बाज, राज तो काज न आवै।
ज्ञान आपको रूप भये, फिर अचल रहावै॥
तास ज्ञान को कारण, स्व-पर विवेक बखानौ।
कोटि उपाय बनाय भव्य, ताको उर आनो॥

(— छहढ़ाला, चौथी ढ़ाल)

(1) रुपया-जेवर आदि आत्मा के क्या काम आते हैं ? कुछ भी नहीं।

(2) स्त्री-पुत्र आदि आत्मा के क्या काम आते हैं ? कुछ भी नहीं।

(3) करोड़ों-अरबों रुपये घर में रक्खे हैं, वे सब क्या आत्मा या शरीर के काम आते हैं ? बिल्कुल नहीं।

(4) यह जीव, व्यर्थ में पागल बना फिरता है।

प्रश्न- पागलपन कैसे मिटे ?

उत्तर- चारों अनुयोगों में स्व-पर का विवेक कहा है, जो भेदज्ञान कर लेता है, वह संसार का अभाव करके मोक्ष का पथिक बन जाता है।

- जय गुरुदेव!

जैसे, भगवान किसी को वन्दन नहीं करते; वैसे ही निर्मल आत्मस्वभाव भी किसी को वन्दन या किसी का आदर नहीं करता। निर्मल पर्याय तो स्वभाव का वन्दन या आदर करती है, किन्तु निर्मल द्रव्यस्वभाव किसी को वन्दन नहीं करता। वह तो दृष्टि का विषय परिपूर्ण तत्त्व है, वह किसी को नमस्कार नहीं करता, किसी का सत्कार नहीं करता।

जो सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र की निर्मलपर्यायें प्रगट होती हैं, वे त्रिकाली द्रव्य की दास हैं परन्तु त्रिकाली द्रव्य, किसी का दास नहीं है।

दिनाँक 31-1-94

(1) मैं जीवतत्त्व हूँ; अजीवतत्त्व सर्वथा नहीं हूँ। उठना-बैठना-खाना-पीना, भोगादि की क्रिया-व्यापारादिक क्रिया-स्त्री-पुत्र-मकान-दुकानादि सब अजीवतत्त्व का खेल है।

(2) मैं व्यर्थ में इनमें अपनापना मानकर दु:खी हो रहा हूँ। अज्ञानदशा में पात्र जीव को ऐसा भासित होता है - मैं साक्षात् भगवान हूँ; शरीरादिक से सर्वथा सम्बन्ध नहीं है।

(3) मैं ज्ञायक भगवान आत्मा हूँ; ज्ञान-दर्शनादि मेरे गुण हैं; ज्ञाता-दृष्टा, मेरा कार्य है। शरीर के गुण, पुद्गल के हैं — मेरा इनसे किसी भी अपेक्षा सर्वथा सम्बन्ध नहीं है; अत: जिन-जिनवर-जिनवरवृषभों की आज्ञानुसार इस प्रकार मानना योग्य है।

(4) पर में कर्ता-भोक्ता, आत्मा का लगना, यह मिथ्यात्व का पक्का लक्षण है।

(5) शरीरादि के कार्य अपने भासित होते हैं, वह जीव, संसार में रुलता है।

(6) संसार एक समय का है, तू अनादि-अनन्त है।

- जय गुरुदेव!

दिनाँक- 1-2-94

(1) सुनार, मिले हुए खोट-चाँदी-सोने को अलग-अलग जानता है।

(2) हंस पक्षी, दूध-पानी को अलग-अलग जानता है।

(3) तेली, तिल-तेल को अलग-अलग जानता है।

(4) किसान, गन्ने-रस को अलग-अलग जानता है।

(5) कपड़े धोनेवाला, कपड़े और मैल को अलग-अलग जानता है।

(6) कपड़े में कोई रङ्ग या दाग लग जावे तो धोनेवाला अलग-अलग जानता है :-

उसी प्रकार जो पात्र जीव, जिनागम के अनुसार मानसिक ज्ञान में शरीर

सम्यग्दर्शनरूप श्रद्धान का बल इतना है कि केवली-सिद्धभगवान, रागादिक परिणमितरूप नहीं होते, संसार अवस्था को नहीं चाहते।

- आचार्यकल्प पण्डित टोडरमल

और राग से भिन्न भगवान आत्मा अलग है — ऐसा जानता है तो उसी समय जैसे पत्थर पर छैनी रखकर दो टुकड़े हो जाते हैं; उसी प्रकार पात्र भव्य जीव अपने भेदविज्ञान से प्रज्ञारूपी छैनी को निज भगवान आत्मा और शरीर-राग पर डालता है, तभी वे भिन्न-भिन्न भासने लगते हैं- तभी अनन्त संसार का व्यामोह उड़ जाता है।

- जय गुरुदेव!

दिनाँक - 1-2-94

(1) भगवान आत्मा, अबन्धस्वभावी और शरीरादि के प्रति राग, बन्धस्वभावी है — ऐसा जानकर प्रज्ञाछैनी डालता है, तभी वे भिन्न-भिन्न हो जाते हैं।

(2) दोनों अलग-अलग तो हैं ही परन्तु अपनी मूर्खता से एक भासते हैं। जब जिन-जिनवर-जिनवृषभों ने कहा- बताया कि तू सर्वथा अलग है, शरीरादि अलग है; पात्र जीव सुखी हो जाता है।

(3) देह-जीव को एक गिने — बहिरात्मा है। अरे भाई! देह तो सर्वथा भिन्न है ही। सावधान! सावधान!!

(4) स्त्री-पुत्र-धनादि प्रत्यक्ष भिन्न हैं, अज्ञानी उन्हीं में अपना माथा मारता है। जैसे, साँड़-कूड़े पर सिर मारकर दु:खी होता है; उसी प्रकार अजीवतत्त्व सर्वथा भिन्न है, उसे अपना मानना-जानना-निगोद जाने की तैयारी है - सावधान! सावधान!

- जय गुरुदेव!

अरे रे! मुझे कहाँ तक यह जन्म-मरण करने हैं। इस भव-भ्रमण का कहीं अन्त है या नहीं? इस प्रकार जब तक चौरासी के अवतार का भय नहीं होता, तब तक आत्मा की प्रीति नहीं होती। 'भय बिना प्रीति नहीं' अर्थात्, भव-भ्रमण का भय हुए बिना, आत्मा की प्रीति नहीं होती। सच्ची समझ ही विश्राम है। अनन्त काल से संसार में परिभ्रमण करते हुए कहीं विश्राम प्राप्त नहीं हुआ है। अब सच्ची समझ करना ही आत्मा का विश्राम है।

मङ्गल समर्पण

दिनाँक - 1-2-94

(1) जैसे, शरीर में मल-मैल आदि अलग हैं; उसी प्रकार आत्मा से शरीरादि अलग हैं।

(2) नाड़े में गाँठ है - जानता है स्वयं; पर ना खुले-दूसरे से खुलवाता है; उसी प्रकार जिन-जिनवर-जिनवर वृषभों से सुनकर शरीरादि और आत्मा की गाँठ खोलनी चाहिए।

(3) प्रवचनसार, गाथा 94 देखो। मोक्षमार्गप्रकाशक, पृष्ठ 91 देखो।

विशेष

(1) जैसे सुनार, सोने-खोट की पहिचान जानता है, वह कभी ठगाता नहीं है - और अग्नि का ताप देकर 16 आना सोना प्राप्त हो जाता है; उसी प्रकार सम्यग्दृष्टि कभी ठगाता नहीं है और अपने में लीन होकर मोक्ष को प्राप्त हो जाता है।

(2) सोने की पहिचान न जाननेवाला खोट का खोट कहे, सोने को सोना कहे तो भी होशियार नहीं; उसी प्रकार मिथ्यादृष्टि, आत्मा को आत्मा कहे, शरीर को भिन्न कहे परन्तु सच्चा श्रद्धान-ज्ञान नहीं - तो वह मूर्ख है।

- जय गुरुदेव!

सच्चा तत्त्वार्थश्रद्धान, व आपा-पर का श्रद्धान व आत्मश्रद्धान व देव, गुरु, धर्म का श्रद्धान, यह सम्यक्त्व का लक्षण है; इन सर्व लक्षणों में परस्पर एकता भी है।

- आचार्यकल्प पण्डित टोडरमल

दिनाँक- 5-2-1994

सुखी होने का उपाय

(1) निज आत्मा स्व, निज आत्मा के अलावा सारा विश्व पर।

(2) स्व-पर का अयथार्थ श्रद्धानादि निगोद; स्व पर का यथार्थ श्रद्धानादि मोक्ष।

(3) निजको निज, पर को पर जान।
फिर दुःख का नहीं लेश निदान॥

(4) हे संसार के जीवों! इतना ही जानो-मानो
बस हो गयी सावधान! सावधान!

(5) स्व-पर का अविवेक, संसार
स्व-पर का विवेक, मोक्ष — इसमें क्या खर्चा होगा ?

(6) स्व-पर का अविवेक-मोह महामद पियो, अनादि भूल आपको भ्रमत :—

(7) स्व-पर का अविवेक, चारों गतियों में घूमकर निगोद है। स्व पर का विवेक, मोक्षमार्ग होकर मोक्ष है।

– **जय गुरुदेव**!

दिनाँक 7-12-94

प्रश्न- मिथ्या अध्यवसाय क्या है ?

उत्तर- आज सम्यग्दृष्टि को छोड़कर, सारा विश्व, मिथ्या अध्यवसाय में पागल बना हुआ है, वह मिथ्या अध्यवसाय, आचार्यकल्प पण्डित टोडरमलजी के शब्दों में समझाइयेगा ?

प्रश्न- (1) मैं हल्का-मैं भारी; मैंने जीभ से आम खाया-पेड़ा खाया; मैंने नाक से सुगन्ध ली; मैंने आँखों से देखा; मैंने कानों से सुना, मेरा मन है; मैं बोलता हूँ; मैं इसका ग्रहण करता हूँ, इसको छोड़ता हूँ; मैं चलता हूँ, ठहरता हूँ।

(2) मेरे नेत्र लाल हो गये; मैं हँसा; मैं भोग करता हूँ।

(3) मुझे गर्मी-सदी-क्षुधा-तृषा लगती है, मैं बीमार हूँ।

(4) मेरा हाथ कट गया, मेरी उँगली कट गई – मैं बालक, मैं जवान, मैं वृद्ध;

(5) मैं मनुष्य-तिर्यंच-देव-नारकी हूँ। मेरा जन्म हुआ, मेरा मरण हुआ, ये मेरे माँ-बाप हैं, भाई -बहिन हैं। ये मेरी धर्मपत्नी है – ये मेरे पुत्र-पुत्रियाँ हैं, यह मेरा मित्र है, यह मेरा दुश्मन है।

अधिक क्या कहे ? जिस-जिस प्रकार से आत्मा को और शरीर को एक मानता है। यह मिथ्या अध्यवसाय है। *(श्री मोक्षमार्गप्रकाशक, पृष्ठ 80 से 81 तक)*

– **जय गुरुदेव!**

क्षणिक विकार को अपना मानकर, आत्मस्वभाव का अनादर करना ही भावमरण है / मृत्यु है। इस भावमरण का अभाव, अमर आत्मस्वभाव की पहचान से होता है। इसलिए हे भाई! यदि तुझे भव-दु:खों का भय हो तो आत्मा को समझने की प्रीति कर! जन्म-मरण के अन्त की बात अपूर्व है, मूल्यवान् है और जिसे समझने की धगश जागृत होती है, उसे समझ में आ सके – इतनी सरल भी है।

दिनाँक 11-2-94

(1) सारा विश्व रेत से तेल निकालने में तन-मन-धन से लगा हुआ है; उसी प्रकार विश्व के अज्ञानी, अजीवतत्त्व में से सुख शान्ति मिलेगी-इसके लिये 24 घण्टे पागल बने फिरते हैं - मण में मण की पूरी शत्-प्रतिशत् की भूल है।

(2) किसी को ध्यान भी नहीं आता — कोई बतानेवाला भी दिखायी नहीं देता — मात्र भाग्योदय से परम पूज्यश्री कानजीस्वामी का, जैसे ऊपर से भगवान का समोशरण उतरा हो — इस बात को बतानेवाले मिले। देखो! — जिसने उनकी बात हृदय में धारण की -वह पार हो गया।

(3) गजब है, अचम्भा है, होशियार कहलानेवाले, पानी मथकर घी निकालने में लगे हैं।

(4) हे पूज्य गुरुदेव! आप मेरे लिये तीर्थङ्कर के समान हैं, मैं नमस्कार करता हूँ।

- जय गुरुदेव!

दिनाँक 21-2-94

जिन-जिनवर-जिनवर वृषभों को नमस्कार!

(1) स्वयं साक्षात् भगवान होने पर मृतक कलेवर में कैसा मूर्छित हो गया है! जिसका वर्णन नहीं हो सकता है। अरे भाई! तू साक्षात अकृत्रिम-चैत्यालय है, तेरा मुर्दे शरीर से सर्वथा सम्बन्ध नहीं।

(2) 1- दु:ख का मूलकारण क्या? 2-दु:ख का स्वरूप क्या? (3) जो उपाय यह कर रहा है, झूठे हैं। (4) हम तुझे सच्चा उपाय बताते हैं — तू ऐसा जाने-माने तो सुख हो।

(3) एक द्रव्य का, दूसरे से सर्वथा सम्बन्ध नहीं है — क्या माना — विचार तो कर? अनादि से दूसरे द्रव्यों को ही स्व मानकर, पागल बना फिरता है। अब तेरे, सुख का समय आया है, तेरा सुख तेरे पास ही है; तू मृतक कलेवर से व्यर्थ का नाता मान रहा है। **- जय गुरुदेव!**

सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र की एकतारूप मोक्षमार्ग, वह ही मुनियों का सच्चा लक्षण है; उसकी पहिचान हो जावे तो मिथ्यादृष्टि रहे नहीं।

- आचार्यकल्प पण्डित टोडरमल

दिनाँक - 23-2-94

(1) यह जीव, अनादि से शरीरादि में अपनेपने की मान्यता से ही स्व-पर का विवेक नहीं कर पाता है।

(2) असंज्ञी पर्यन्त तो इतना उघाड़ नहीं कि विवेक कर सके, परन्तु विश्व के संज्ञी-पंचेन्द्रियों को इतना विवेक ज्ञान का उघाड़ है कि स्व-पर का विवेक करके, मोक्षमार्ग पर आरूढ़ होकर क्रम से मोक्ष प्राप्त करे।

(3) एक आत्मा-दूसरी तरफ अनन्त पुद्गल परमाणुओं का पिण्ड है। संज्ञी होने पर, यह पृथक -पृथक विवेक नहीं कर पाता - तो धिक्कार है। (1) आत्मा-अनन्त गुणों का पुँज हैं; (2) ज्ञान की पर्याय में थोड़ा सा उघाड़ है। (3) उस उघाड़ में, जिसमें से ज्ञान की पर्याय आई, वह मैं, तो बेड़ा पार हो जावे; (4) परन्तु ज्ञान की पर्याय में शरीरादि-इन्द्रियादि निमित्त पड़ते हैं - यह अपनी मूर्खता से उन्हें व्यर्थ में इष्ट-अनिष्टपना मान लेता है और सारा जीवन इसी में व्यतीत करके, निगोद में चला जाता है; (5) जब यह ध्यान में आ जावे कि कोई पदार्थ इष्ट-अनिष्ट नहीं, मात्र ज्ञेय है; मैं ज्ञायक हूँ — तो सुखी हो जावे।

- जय गुरुदेव!

आत्मस्वभाव के लक्ष्यवाला जीवन ही आदरणीय है, इसके अतिरिक्त दूसरा जीवन आदरणीय नहीं गिना गया है; इसलिए भव्यात्माओं को बारम्बार शुद्धात्मा की चिन्ता में और उसी के रटन में रहना चाहिए - ऐसा श्री आचार्यदेव का उपदेश है।

दिनाँक 23-2-94

एक विचार

स्वयं अकृत्रिम जिन चैत्यालय पारिणामिकभाव ज्ञायकरूप परमात्मा है। इस जीव की कभी भी एक समय के लिये भी अजीवतत्त्व की भेंट नहीं हुई। वर्तमान समय में, (1) जिसको समयसार, कुन्दकुन्द भगवान का तथा अमृतचन्द्राचार्य की आत्मख्याति टीका, (2) मोक्षमार्गप्रकाशक; (3) जैन सिद्धान्त प्रवेश रत्नमाला, जो स्व-पर के लिये अलौकिक चमत्कार है — इतना योग बनने पर भी, अर्थात् मेरे विचार में कुन्दकुन्द भगवान, अमृतचन्द्राचार्य, पण्डित टोडरमलजी व पूज्यश्री कानजीस्वामीजी का योग बनने पर, जीव निश्चयाभासी, उभयाभासी-व्यवहाराभाषी बन जावे तो धिक्कार है। अरे जीव! जाग -जाग! यह सुलटने का अवसर आया है। तू स्व-पर का विवेक करले — तू

मङ्गल समर्पण

भगवान है! सारा विश्व अजीव के खाते में है। तेरा अजीवतत्त्व से सर्वथा सम्बन्ध नहीं है। (4) जीव, व्यर्थ में, मैंने यह छोड़ा - यह त्यागा - अरे जीव! मैं त्रिकाल में पर की कुछ किया ही नहीं — भोग भी नहीं, व्यर्थ में उस पर दोष लगाता है — यह मिथ्यात्व की बलिहारी है — यह तेरा हरामजादीपना है।
- जय गुरुदेव!

एक विचार

(1) जीव ने अजीवतत्त्व को छुआ भी नहीं और मानता है मैंने छुआ-भोगा, यह तेरा हरामजादीपना है।

(2) अज्ञान मोह-अज्ञान अन्धकार हैं, उसका सुलटना दुर्निवार है।

(3) जो जैनकुल मिलने पर, पूज्य गुरुदेव का समागम मिलने पर भी, अजीवतत्त्व को अपनापना मानता है, उसे समयसार परिशिष्ट में 14 बार, मूर्ख - मिथ्यादृष्टि-पापी कहा है। एक बार मान तो सही — तू जीवतत्त्व है; तेरा अजीवतत्त्व से किसी भी अपेक्षा, किसी भी प्रकार का सर्वथा सम्बन्ध नहीं है — इतना ध्यान आते ही मोक्षमार्ग में आ गया है। यह जीव, व्यर्थ में शरीर में एकत्वबुद्धि से ही पागल बना फिरता है। बात जरा सी है। अरे! अपने को ज्ञानवान कहलाकर के अजीवतत्त्व को अपना माने-धिक्कार-धिक्कार है!!

हे परम पूज्य गुरुदेव! तुम साक्षात् मेरे लिये तीर्थङ्कर ही हो — तुम्हें अनन्त बार नमस्कार! **- जय गुरुदेव!**

वीतरागी शास्त्रों में अनेकान्तरूप सच्चे जीवादि तत्त्वों का निरूपण है और सच्चा रत्नत्रयरूप मोक्षमार्ग दिखलाया है, उसी से जैनशास्त्रों की उत्कृष्टता है; उसकी पहिचान हो जावे तो मिथ्यादृष्टिपना रहता नहीं।

- आचार्यकल्प पण्डित टोडरमल

प्रात: 3 बजे **दिनाँक 23-2-94**

(1) **हे परम पूज्य गुरुदेव!** आपने पञ्चम काल में अमृतवर्षा 45 वर्षों में करके — अनादि से समस्त ज्ञानियों का मर्म बताया है। भव्य जीव, आपका यशोगान करके थकते नहीं। अरे! पञ्चम काल में अमृत वर्षा! तू जीवतत्त्व है; अजीवतत्त्व नहीं है।

(2) जीव-जुदा, पुद्गल जुदा, यही तत्त्व का सार है —

(3) बारह अङ्ग का सार - तू जीवतत्त्व है — ऐसा अनुभव में आना।

(4) जिसने अपने को जाना, उसने समस्त ब्रह्माण्ड को जाना।

(5) अपने को जाना — अपने में स्थिर न रह सका, तो रास्ते में श्रावकपना-मुनिपना पड़ता है। ज्ञानी की दृष्टि अपने भगवान पर ही रहती है। अरे! पञ्चम काल में अमृत वर्षा! **- जय गुरुदेव!**

नाटक दिखाने-देखने का **दिनाँक - 4-3-94**

पवनकुमार जैन अलीगढ़ को अपनी समाज के विद्वानों का परिचय करने का भाव है — वह चाहता है मैं भी साथ चलूँ —

A- 20 अप्रैल से 27 अप्रैल तक देवलाली में जयपुर के विद्वानों व युगलजी आदि से मिलना हो जावेगा।

B- 1 मई से 8मई तक बोरीबली, मुम्बई में परमश्रुत निजाभ्यास शिविर है।

C- 8 मई से 15 मई तक सोनगढ़ का रखा जावे।

D- यदि पवन की इच्छा हो तो मैं तैयार हूँ, परन्तु मैं सभी जगह दर्शक के रूप में ही रहूँगा।

E- पवन की मँजूरी होने पर, मैं 16-4-94 को अलीगढ़ पहुँच जाऊँगा।

F- मेरी भावना है देहरादून का मण्डल भी चले तो अच्छा रहेगा।

कैलाशचन्द्र जैन

यह मनुष्यभव प्राप्त करके करोड़ों रुपये कमाना अथवा मान-प्रतिष्ठा इत्यादि प्राप्त करने में जीवन व्यतीत करने को यहाँ धन्य नहीं कहते हैं, अपितु जो अन्तरङ्ग में चैतन्य की भावना करता है, उसका जीवन धन्य है - ऐसा कहते हैं।

दिनाँक 5-3-94

(1) आस्रव दु:खकार घनेरे, बुद्धिवंत तिन्हें निरवैरै।

(श्री समयसार, कलश 181)

(2) जैसे, सुनार, सोने-खोट का भेद जानकर, सोने को अलग कर लेता है; इसी प्रकार पात्र भव्य जीव, आत्मा को राग से भिन्न जानकर, अनुभव कर लेता है — आत्मा अबन्धस्वभावी है; राग, बन्धस्वभावी है।

(3) एकमात्र भेदविज्ञान ही मोक्ष का कारण है।

(4) जब यह जीव, स्व-पर का यथार्थ श्रद्धान कर लेता है, तभी मोक्षमहल में इसका प्रवेश हो जाता है।

(5) **वर्तमान में परम पूज्य श्री कानजीस्वामी के समय में ऐसा अवसर आया है — इस अवसर को मत खो देना।**

(6) यह राग आग दहै सदा, तातै समामृत सेईये

(7) तू भगवान है - जीवतत्त्व है; अजीवतत्तव नहीं है — इतनी सी बात है - सावधान!

- जय गुरुदेव!

दिनाँक 6-3-94

(1) उभयाभासी के दश प्रश्नोत्तरों के द्वारा यदि सच्चा यथार्थ निर्णय ना किया, तेरे को निगोद में जाना पड़ेगा - अत: हे जीव! सावधान! सावधान!!

(2) दश प्रश्नोत्तर का थोड़े में सार क्या है?

तू जीवतत्त्व है; अजीवतत्त्व नहीं है।

(3) यदि अपने को अजीवतत्त्व ही मानता रहा — क्या होगा? सावधान!

(4) दश-प्रश्नोत्तर, मोह-राग-द्वेष को नष्ट करने के लिये रामबाण औषधि हैं।

जब तक सम्यग्दर्शन ना हो तो, तब तक बराबर निर्णय करने का प्रयत्न करना — **- जय गुरुदेव!**

दर्शनमात्मविनिश्चिति अर्थात्, अपनी आत्मा का श्रद्धान, सम्यग्दर्शन कहा है और विनिश्चित का अर्थ अपनी आत्मा किया है।

- आचार्य अमृतचन्द्र

दिनाँक 8-3-94

(1) पर का ग्रहण त्याग तो त्रिकाल में है ही नहीं।

(2) अजीवतत्त्व से सर्वथा भिन्न, 'यह मैं' — ऐसा जाना-माना तो आस्रव उत्पन्न नहीं हुआ - शुद्ध पर्याय प्रगट हुई - इस प्रकार अशुद्ध का त्याग - शुद्ध का ग्रहण भी कहनेमात्र का है। *(श्री समयसार, कलश 136)*

(3) एकमात्र स्वभाव पर दृष्टि कर तो सारा जैनदर्शन का मर्म दृष्टि में आवेगा।

(4) वास्तव में स्वभाव पर दृष्टि आते ही आस्रव उत्पन्न नहीं होते; संवर-निर्जरा प्रगट हो जाती है; द्रव्यकर्म का अभाव हो जाता है - इस सबका एक समय है।

(5) पहले कार्य को निरपेक्ष सिद्ध करो, फिर कहो — किस का अभाव करके हुआ - किसमें से हुआ - निमित्त कौन है ? — यह ज्ञान की अपेक्षा बात है।

- जय गुरुदेव!

दिनाँक - 13-3-94

प्रश्न- कर्ता-कर्म अधिकार में तीन प्रकार का सम्बन्ध बताया है - उसमें से आप संयोगसिद्ध -सम्बन्ध को समझाइये ?

उत्तर- शरीरादिक कहो या अजीवतत्त्व कहो, एक ही बात है — जिनसे सर्वथा सम्बन्ध नहीं है — उनमें बुद्धि जाने से जो विकारीभाव उत्पन्न होते हैं — वे संयोगसिद्धसम्बन्ध कहलाते हैं। जो इसका सच्चा सम्बन्ध मानता है, वह चौरासी लाख योनियों में भ्रमण करता हुआ निगोद में चला जाता है ?

प्रश्न- इनके अभाव का क्या उपाय बताया है ?

उत्तर- शरीरादि से जिनसे कुछ भी सम्बन्ध नहीं है, उन्हें अपना ना माने - जाने, तो अपने भगवान पर दृष्टि आ जाती है - वह मोक्षमार्ग को प्राप्त करके, मोक्ष को प्राप्त कर लेता है :—

(1) तादात्म्यसिद्धसम्बन्ध - ज्ञानादि गुणों के साथ आत्मा का।

(2) संयोगसिद्धसम्बन्ध - विकारीभावों के साथ आत्मा का।

(3) परस्पर अवगाहसम्बन्ध - आठ कर्मों का।

बाकी शरीरादि का कोई सम्बन्ध नहीं। **- जय गुरुदेव!**

जो जीव, आत्मा की रुचि और मिठास छोड़कर धन, शरीर तथा भोग की रुचि और मिठास करता है, वह जीव, आत्मस्वभाव की हत्या और भावमरण करता है। ऐसे भावमरण का अभाव करने के लिए, करुणा करके आचार्यदेव ने सत्शास्त्रों की रचना की है।

स्वाभाविक अनन्त ज्ञान आदि अनन्त गुण का आधारभूत निज परमात्मद्रव्य उपादेय है तथा इन्द्रियसुख आदि (द्रव्यकर्म, नोकर्म, भावकर्म) परद्रव्य त्याज्य हैं; इस तरह सर्वज्ञदेव प्रणीत निश्चय-व्यवहारनय को साध्य-साधकभाव से जानता है,...यह अविरत सम्यग्दृष्टि चौथे गुणस्थानवर्ती का लक्षण है।

– श्री ब्रह्मदेवसूरि

रात्रि 1.30 **दिनाँक 15-3-94**

धन्य-धन्य गुरु कहान!

(1) यह जीव, 24 घण्टे व्यवहार की भाषा में बोले — उसी की चर्चा करे; अत: 24 घण्टे निश्चय-व्यवहार के प्रश्नों को ही विचारे।

(2) मैं उठा- व्यवहारनय से निरूपण किया है, असत्यार्थ मानकर — ऐसा श्रद्धान छोड़ना आदि कार्य करो — तुम्हारा कल्याण होगा।

(3) अहो! पूज्य गुरुदेव मेरे लिए आप सिद्धसम ही हो - जैसे, भारत में सिद्ध पधारे हों — वैसे ही आप मुझे लगे हो - धन्य-धन्य-धन्य सिद्धसमान गुरु कहान।

(4) बड़े भारी महान कल्याणक में पूज्यश्री से वार्तालाप हुई — वहाँ पर किसी को जाने की इजाजत नहीं, परन्तु मेरी तो अनहोनी बातें हुई — जय गुरुदेव-धन्य-धन्य-कहानगुरु!

भारत में सिद्ध पधारे-अरे! भारत में सिद्ध पधारे, अहो! कहान गुरु पधारे, अरे भारत में सिद्ध पधारे।जय कहान गुरु! जय कहान गुरु!!

रात्रि 10:30 से 11.30 तक

अहो! मेरे आँगन में सिद्ध पधारे!
सिद्ध पधारे, सिद्धपधारे, कहान गुरु पधारे।
अरे सिद्धालय से मेरे कहान गुरु आये।
दर्शन कर लो, दर्शन करलो, सिद्ध पधारे।
जो दर्शन करेगा -सिद्ध बन जावेगा।
अरे! कहान-गुरु पधारे, अरे! भारत में सिद्ध पधारे हैं।
अरे! भारत में सिद्ध - यह अचम्भा हो, अचम्भा है! पधारे कौन? कहान गुरु।
कहाँ से? सिद्धालय से।
कर लो दर्शन मेरे कहान गुरु के।
पधारे सिद्धालय से कहान गुरु।
अहो! कहान गुरु पधारे - सिद्धालय से।
अरे! कहाँ से पधारे।

सिद्धालय से – सिद्धालय से !
एक बार जो मेरे कहान गुरु के दर्शन कर ले।
वह सिद्ध बन जावें –
अहो ! सिद्ध बन जावे – अहो ! सिद्ध बन जावे।
जय कहान –गुरु, जय कहान गुरु !
तुम हो नाथ मेरे –
तुम बिन मेरा कोई नाथ नहीं।
धन्य–धन्य गुरु कहान। – **जय गुरुदेव** !

ऐसा नृत्य शब्दों में नहीं आ सकता

अरे कहान गुरु पधारे ! कहाँ से ? सिद्धालय से –
क्या लाये – मोक्ष का फरमान
मोक्ष का फरमान क्या ?
तू साक्षात भगवान है।
शरीर नहीं है ?
शरीर नहीं है; अशरीरी सिद्ध है।
जो समझे – वह पार हो जाता है।
अरे सिद्धालय से आया मेरा साक्षात भगवान।
करे लो दर्शन – करलो दर्शन, फिर मौका नहीं आवेगा।
कर लो मेरे सिद्ध के दर्शन, सिद्ध आया – कहाँ आया देखो ! देखो !!
रे मेरा सिद्ध आया – मेरा सिद्ध आया।
धन्य धन्य गुरु कहान।
धन्य धन्य गुरु कहान।
पधारो–पधारो–पधारो।
जब नृत्य हुआ – वहाँ कौन–कौन था।
ज्ञानियों की भीड़ थी।

चैतन्यदेव का सम्यग्दर्शन प्रगट करने के लिए पहले द्वार के रूप में, अर्थात् निमित्तरूप में– व्यवहाररूप में नव तत्त्व की श्रद्धा होती है, तथापि परमार्थ सम्यग्दर्शन तो एक अभेद तत्त्व की श्रद्धा से ही होता है। व्यवहारश्रद्धा तो वारदान के समान है; मूल वस्तु तो अन्दर में अलग है।

जिनको मैं जानता हूँ – उनमें से कोई भी दिखा नहीं।

पर सब ज्ञानी ही थे।

ज्ञानियों के बीच में नृत्य —ऐसा नृत्य हमने देखा नहीं।

नृत्य में क्या आया –

पण्डित टोडरमलजी के 10 प्रश्नोत्तर को यथार्थरूप से जानेगा – वह मोक्ष का पथिक बन जावेगा।

यह सन्देश सिद्धालय से आया है।

सिद्धालय से क्या आया ?

जो अजीवतत्त्व से भिन्न जानेगा, वह सिद्ध बनेगा अरे! सिद्ध बनाया यह कहान गुरु कह गये – अरे! सिद्ध पधारे – कहान गुरु पधारे। **– जय गुरुदेव!**

दिनाँक - 26-3-94

वस्तु विचारत ध्वावतै - मन पावे विश्राम।
रस स्वादत सुख उपजै - अनुभव याकौ नाम॥

(1) क्या कान का मैल, दाँतों का मैल, हाथ-पैरों के नाखून – किसी को अपने भासित होते हैं ? – कभी नहीं।

(2) किराये के मकान में रहता हुआ भले आदमी को, क्या मकान अपना भासित होगा ? कभी नहीं।

(3) क्या लड़की का विवाह होने पर, माँ-बाप-भाई-बहन आदि अपने भासित होंगे ? कभी नहीं।

उसी प्रकार विश्व के ज्ञानियों को, चाहे नरक में पड़ा हो; तिर्यंच में पड़ा हो; देव में पड़ा हो; मनुष्य गति में पड़ा हो; उसे विश्व में अपनी आत्मा और शुद्ध पर्याय से ही सम्बन्ध होता है, तभी वह मोक्षमार्गी नाम पाता है।

(4) शरीरादि – राग की क्रिया अपनी भासित ना होना – किस को होगा ?

जिसका मोक्ष का किनारा नजदीक आया–

'सः हि मुक्त एव'

मङ्गल समर्पण

'जीवादि सद्दहणं सम्मत्त' वीतराग-सर्वज्ञदेव द्वारा कहे हुए शुद्ध जीव आदि तत्त्वों में चल, मलिन, अगाढ़ दोषरहित श्रद्धान, रुचि अथवा 'जो जिनेन्द्र ने कहा, वही है; जिस प्रकार जिनेन्द्र ने कहा है, उसी प्रकार है' – ऐसी निश्चयरूप बुद्धि सम्यग्दर्शन, आत्मा का परिणाम है।

– श्री ब्रह्मदेवसूरि

पूज्य गुरुदेव! आपने अनादि से तीर्थङ्करों का मार्ग बताया; पञ्चम काल को चौथा काल, भरतक्षेत्र को विदेहक्षेत्र बनाया —आप मेरे तारण-तरणहार हो-

जय गुरुदेव - जय विश्व के ज्ञानियों की — मैं आपका अभिनन्दन करता हूँ।

तू स्थाप्य निज को मोक्षपथ मैं .....

सावधान! सावधान!

- जय गुरुदेव!

दिनाँक - 26-3-94

प्रश्न- क्या भावलिङ्गी मुनि को शरीर की क्रिया व अस्थिरता का राग अपना भासित होता है?

उत्तर- (1) क्या सोने के पारखी जौहरी को सोने में खोट अपना भासित होता है? कभी नहीं।

(2) धाय, सेठ के बच्चे को पालती हुई दिखती है, क्या उस बच्चे को अपना मानती है? कभी नहीं।

(3) जैसे, पेट में विष्टा-पेशाब है, क्या कोई भला आदमी उसे अपना मानेगा? कभी नहीं।

(4) वेश्या को पैसे से प्यार है, पुरुष से नहीं; तो क्या पुरुष को प्यार करती हुई, उसे अपना मानेगी? कभी नहीं।

(5) सेठ की दुकान पर मुनीम आदि नौकर रहते हैं, क्या मुनीम आदि दुकान को अपना मानेंगे? कभी नहीं।

(6) खजाँची करोड़ों रुपयों का लेन-देन करता दिखता है; क्या उसे अपना मानेगा? कभी नहीं।

उसी प्रकार भावलिङ्गी मुनि को अस्थिरता का राग व शरीर की क्रिया, अपनी भासित नहीं होती है। क्योंकि उसका सम्बन्ध त्रिकाली द्रव्य-निश्चय; शुद्ध पर्याय प्रगटी — व्यवहार। वैसे ही विश्व के ज्ञानियों को चाहे-चौथे गुणस्थानी हो,

देखो, यह जीव एक सर्प देखने पर कितना अधिक भयभीत होता है क्योंकि इसे शरीर के प्रति ममत्व और प्रीति है। अरे! प्राणी को एक शरीर पर सर्प के डंसने का इतना भय है तो अनन्त जन्म-मरण का भय क्यों नहीं है? आत्मा की समझ बिना, अनन्त अवतार के दुःख खड़े हैं, इस बात का तुझे भय क्यों नहीं है? अरे! यह भव पूरा हुआ, वहीं दूसरा भव तैयार है; इस प्रकार एक के बाद दूसरा भव, तू अनन्त काल से कर रहा है। आत्मा स्वयं सच्ची समझ न करे तो जन्म-मरण का अभाव नहीं होता।

पञ्चम-गुणस्थानी हो-शरीर की क्रिया-अस्थिरता का राग, अपना भासित नहीं होता है।

जिसे शरीर की क्रिया, अस्थिरता का राग, अपना भासित होता है, चाहे वह बड़े से बड़ा कहलाता हो, गृहीतमिथ्यादृष्टि है।

धन्य-धन्य सिद्धों की नगरी- धन्य धन्य ज्ञानियों का मिलाप।

मैंने तो पूज्य गुरुदेव को ही देखा है।

जय गुरुदेव- जय गुरुदेव!

दिनाँक - 26-3-94

अरे! बड़े से बड़े अभिमानी को यह दिखायी देता है कि आत्मा निकलने के बाद, उसे जला देंगे — सभी आदि से सम्बन्ध नहीं रहेगा।

उसी प्रकार - जो जीव, संसार में रहता हुआ-दिखता हुआ, अपने को शरीरादि से भिन्न मान लेता है, अनुभव कर लेता है - वह मोक्षमार्गी है -

यह जीव, व्यर्थ में पागल हो रहा है। सारा समय जिनसे सम्बन्ध नहीं है।

जैनकुल मिला है, पूज्यश्री का समागम मिला है, फिर शरीरादि की ओर देखता है —धिक्कार है। धिक्कार है।

सावधान! सावधान! सावधान! - **जय गुरुदेव!**

प्रात: 7 बजे **दिनाँक** - 26-3-94

विश्व के संज्ञी पञ्चेन्द्रियों को इतना ज्ञान का उघाड़ है कि वे संसार का अभाव और मोक्षमार्ग की प्राप्ति कर सकें।

(1) जैसे, नरक में नारकी, तीव्र वेदना में पागल है; तिर्यंच, मायाचारी में पागल है; देव, महती इच्छा में पागल है; वैसे ही मनुष्यभव मिलने पर, विकारीभावों में पागल बना रहा तो चारों गतियों में घूमता हुआ निगोद चला जावेगा।

(2) जिसको शरीर, शरीर की क्रिया अपनी-दिखती है, वह नारकी ही है। जब तक अपना मानना हो, तब तक नारकी ही है।

दिगम्बर धर्म मिलने पर, पूज्य गुरुदेव का समागम होने पर भी शरीरादि से भिन्न अनुभव ना किया तो निगोद में चला जावेगा।

मोक्षमार्गप्रकाशक पूरा ही इसका साक्षी है। विशेषरूप से 77 से 82 पृष्ठ तक। कहना आने पर भी अपने को ना समझो तो क्या होगा?

मिथ्यात्व आदि सात प्रकृतियों के उपशमादि होने पर, अथवा अध्यात्मभाषा के अनुसार निज शुद्ध आत्मा के सन्मुख परिणाम होने पर, शुद्ध आत्मभावना से उत्पन्न यथार्थ सुखरूपी अमृत को उपादेय करके, संसार-शरीर और भोगों में जो हेयबुद्धि है, वह सम्यग्दर्शन से शुद्ध है, वह चतुर्थ गुणस्थानवाला व्रतरहित दार्शनिक है।

- **श्रीमद् ब्रह्मदेवसूरि**

दिनाँक - 28-3-94

आचार्य कल्प पण्डित टोडरमलजी ने सातवाँ अधिकार — जैन होने पर; जिनाज्ञा मानने पर भी, निरन्तर शास्त्र स्वाध्याय करने पर भी, सच्चे-देव-गुरु-शास्त्र को बाहरीरूप से मानने पर भी — जो अपने को धर्म के ठेकेदार मानते हैं, उन्हें निश्चयाभासी- व्यवहाराभासी-उभयाभासी की मान्यता लेकर, समझाया है; इतना होने पर भी ना समझा तो निगोद तैयार खड़ा है।

परम पूज्यश्री कानजीस्वामीजी को छोड़कर, अधिकांश जीव धर्म की आड़ में नारकी जैसा जीवन व्यतीत कर रहे हैं। सावधान! सावधान! सावधान!

(अ) मन्दिरजी रोजाना जाना-आना चाहिए, यह साक्षात समवसरण का रूप है। वह इशारा करता है — मैंने अजीवतत्त्व को अपना नहीं माना, तो मैं ऐसा बना।

(ब) समयसार, मोक्षमार्गप्रकाशक, प्रवचनसार, नियमसार-अपने सात भाग आदि के अभ्यास का निरन्तर अभ्यास रखना —

— मन्त्रों के द्वारा —

(1) केवली के केवलज्ञान को मानें,

(2) वस्तुस्वरूप को मानें;

(3) 'सत्द्रव्यलक्षणं' को मानें;

(4) 'उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य' को मानें;

(5) समयसार की तीसरी गाथा को मानें;

(6) मोक्षमार्गप्रकाशक का 52 पृष्ठ मानें- 306 मानें।

(7) प्रवचनसार जो एकमात्र दिव्यध्वनि का सार है।

विश्व के मुमुक्षुओं! 80 गाथा से 92 तक; 93 से 126तक - जिसमें मन्त्रों का स्पष्ट खुलासा है; 172 से 200 तक मन्त्रों की भरमार है। गाथा 232 से 244 तक संक्षिप्त में अमृत परोसा है। **- जय गुरुदेव!**

अहा! स्वानुभूतिमय यह मार्ग तो अनन्त आनन्द का देनेवाला मार्ग है। अनन्त आनन्द का मार्ग तो ऐसा अद्भुत ही होता है न! जगत को ऐसे मार्ग का लक्ष्य नहीं है; इसलिए बाहर में राग के सेवन को मार्ग मान रहा है। बापू! तेरा मार्ग राग में नहीं; तेरा मार्ग तो चैतन्य में समाहित है। चैतन्य में अगाध गम्भीर शान्ति और अनन्त गुण का भण्डार भरा है, उसमें देखते ही तुझे आनन्द का सागर दिखायी देगा।

मङ्गल समर्पण

दिनाँक 29-3-94

मङ्गल समर्पण

अनन्त ज्ञानियों को नमस्कार!

(1) एक तरफ स्वयं जीवतत्त्व; दूसरी तरफ अजीवतत्त्व; जिस समय किसी भी क्षेत्र में कोई जीव ऐसा मानेगा, उसी समय मोक्षमार्ग पर आरुढ़ हो जावेगा।

(2) पर से, शरीरादि अजीवतत्त्व से सर्वथा सम्बन्ध न है-न होगा और न हुआ है —ऐसा मानते ही दृष्टि स्वभाव पर होती है; अन्य उपाय नहीं है।

[श्री प्रवचनसार, गाथा 93 से 126तक का सार]

(3) प्रत्येक द्रव्य का, द्रव्य-गुण तो अनादि अनन्त वैसा का वैसा ही है - अरे भाई! अनादि अनन्त प्रत्येक द्रव्य की या गुण की पर्याय का स्वकाल है, वह वैसी की वैसी पड़ी है - जरा मान के देख।

हे परम पूज्य गुरुदेव! अपने अनादि से तीर्थङ्करों के मार्ग को दो शब्दों में परोसा है। धन्य -धन्य गुरु कहान।

अहो! अहो! धन्य गुरुदेव! धन्य-धन्य कुन्दकुन्द भगवान!! धन्य-धन्य अमृतचन्द्राचार्य! धन्य-धन्य आचार्यकल्प पण्डित टोडरमलजी!!

प्रवचनसार में समय-समय की पर्याय, चाहे वह जड़ की हो या चेतन की हो, विकारी हो अविकारी हो — उस एक समय की पर्याय का **जन्मक्षण** है।

उस जन्मक्षण को (1) आत्मा के प्रदेशों के द्वारा, (2) गुणों के द्वारा, (3) मात्र पर्याय के द्वारा। उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य — यह एक सर्वज्ञ की निशानी है।

- जय गुरुदेव!

सर्व द्रव्यों की प्रत्येक पर्याय में यह छह कारक एक साथ बर्तते हैं; इसलिए आत्मा और पुद्गल, शुद्धदशा में या अशुद्धदशा में स्वयं छहों कारकरूप परिणमन करते हैं और दूसरे कारकों की (निमित्तकारकों की) अपेक्षा नहीं रखते हैं।

- श्रीमद् अमृतचन्द्राचार्य

दिनाँक - 30-3-94

प्रश्न- निगोद से लगाकर चारों गतियों के मिथ्यादृष्टि जीव क्यों पागल हैं ?

उत्तर- एकमात्र अजीवतत्त्व को अपना मानने के कारण; जिस समय कोई भी जीव, अजीवतत्त्व से भिन्न मानेगा, उसी समय मोक्षमार्ग में प्रवेश हो जावेगा।

प्रश्न- आश्चर्य है —क्या आश्चर्य है ?

उत्तर- दिगम्बर जैनधर्म मिलने पर, पूज्यश्री कानजीस्वामी का समागम मिलने पर भी, अजीवतत्त्व में ही पागल बना फिरता है।

प्रश्न- यह जीव, अनादि से क्या कर रहा है ?

उत्तर- जैसे कोई रेत से तेल निकालने में लगा हुआ है; उसी प्रकार अपनी पूरी ताकत से अजीव को ही स्वयं मानता है तथा अजीवतत्त्व में ही सुख-दुःख की कल्पना करके निगोद में चला जाता है।

प्रश्न- सुबह से शाम तक क्या दिखता है ?

उत्तर- भाई! अजीवतत्त्व का खेल है —तू अपने को भिन्न जान-मान तो सुखी हो। **- जय गुरुदेव!**

दिनाँक- 6-4-94

(1) एकमात्र अजीवतत्त्व को अपना मानने के कारण ही चारों गतियों में भटकता है।

(2) जिस समय यह जीव, अपने को जीवतत्व मानेगा, मोक्षमार्ग शुरु हो जावेगा।

(3) अजीवतत्त्व को अपना मानने के कारण ही; जैसे, विजार, कूँड़े के ढ़ेर पर माथा मानकर ऐसा मानता है, मैंने बहुत किया; उसी प्रकार मिथ्यादृष्टि जीव, व्यर्थ में उठने-बैठने, खाना-पीना, भोगादि-भोगने में कर्तापना-भोक्तापना मानकर, दुःख उठता है और निगोद में चला जाता है। यदि वर्तमान में अपने को समझ लिया तो सादि-अनन्त सुखी हो गया।

(4) आज सारा विश्व, निगोद से लगाकर, द्रव्यलिङ्गी मुनि तक, अजीवतत्त्व को अपना मानने के ही कारण दुःखी है। — हे जीवों! यदि सुख चाहते हो तो अजीवतत्त्व को अपना मत जानो; जीवतत्त्व को अपना मानो -अभी-अभी बेड़ा पार हो जावेगा। **- जय गुरुदेव!**

सर्वत्र वीतरागता ही जैनधर्म है। अविरत सम्यग्दृष्टि हो, देशव्रती श्रावक हो अथवा सकलव्रती मुनिराज हों; सर्वत्र भूमिका के योग्य शुभभाव होने पर भी, परिणति में जितनी वीतरागता परिणमित है, उतना धर्म है; साथ में वर्तनेवाला शुभराग, वह कहीं धर्म अथवा धर्म का परमार्थ साधन नहीं है। सुख निधान निज ज्ञायकस्वभाव में रमनेवाले मुनिराज को भी अभी पूर्ण वीतराग-सर्वज्ञदशा प्रगट नहीं हुई है; पूर्णदशा तो अरहन्त परमात्मा को प्रगट हुई है। पूर्ण वीतरागदशा प्रगट नहीं होने पर भी मुनिराज को वीतरागस्वभावी निज ज्ञायक भगवान के उग्र आलम्बन से प्रचुर वीतरागता उत्पन्न हुई है।

मङ्गल समर्पण

मङ्गल समर्पण

निश्चय से पर के साथ आत्मा का कारकपने का सम्बन्ध नहीं है कि जिससे शुद्धात्मस्वभाव की प्राप्ति के लिए सामग्री (बाह्य साधन) खोजने की व्यग्रता से जीव (व्यर्थ ही) परतन्त्र होते हैं।

- श्रीमद् अमृतचन्द्राचार्य

दिनाँक 7-4-94

प्रश्न- क्या विश्व का अज्ञानी, मात्र अजीवतत्त्व को अपना मानने के कारण ही अज्ञानी है ?

उत्तर- हाँ भाई ! एक मात्र अजीवतत्त्व को मानने के ही कारण अज्ञानी हैं।

प्रश्न- अजीवतत्त्व को अपना मानने के कारण क्या होता है ?

उत्तर- चौबीस घण्टे मोह-राग-द्वेष की वृद्धि होकर, चारों गतियों में घूमता हुआ निगोद चला जाता है।

प्रश्न- निगोद में ना जाना पड़े-मोक्ष की प्राप्ति हो, इसके लिये क्या करना ?

उत्तर- मैं जीवतत्त्व हूँ — अजीवतत्त्व सर्वथा नहीं हूँ — ऐसा मानसिक ज्ञान में लेकर, अपना द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव, अजीव के द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव में न मिलावें; अजीव का द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव, अपने जीवतत्व में ना मिलाये, उसी समय मोक्ष का पथिक बन जाता है।

- जय गुरुदेव!

आत्महित के दश प्रश्न

प्रश्न- जीव, किस कारण परिभ्रमण करता है ?

उत्तर- अपने को भूला —पर में अपनापना माना।

प्रश्न- जन्म-मरण से छूटने का क्या उपाय है ?

उत्तर- मैं जीवतत्त्व हूँ; अजीवतत्त्व नहीं।

प्रश्न- मोक्षार्थी को प्रथम क्या जानना चाहिए ?

उत्तर- मैं जीवतत्त्व हूँ।

प्रश्न- पूर्णता को ध्येय कैसे बाँधना ?

उत्तर- मैं जीवतत्त्व हूँ।

प्रश्न- प्रत्यक्ष सत्पुरुष और किसलिये शोधना ?

उत्तर- जब मैं जीवतत्त्व हूँ; अजीवतत्त्व नहीं हूँ। — ऐसा निर्णय करेगा, उसमें प्रत्यक्ष सत्गुरु आ गया। बाहर कहीं ढूढ़नें नहीं जाना पड़ेगा।

प्रश्न– सत्पुरुष को कैसे पहिचानना ?

उत्तर– अपने को जाना, तभी सत्पुरुष को जाना।

प्रश्न– सम्यग्दर्शन को प्राप्ति का क्रम क्या है ?

उत्तर– मैं जीवतत्त्व हूँ — ऐसा मानना ही क्रम है।

प्रश्न– भेदविज्ञान की विधि क्या है ?

उत्तर– मैं जीवतत्त्व हूँ, अजीवतत्त्व नहीं हूँ।

प्रश्न– आत्मानुभव कैसे हो ?

उत्तर– जब अपने को जीवतत्व मानेगा, तभी हो जावेगा।

– जय गुरुदेव!

देहरादून

दिन– शनिवार समय – रात्रि 12.45 से 2.15 तक बजे तक

दिनाँक – 21–5–94

जिनवाणी का सिंहनाद, ओंकारध्वनि का सार, सीमन्धरभगवान का सिंहनाद, अमृतचन्द्राचार्य का सिंहनाद, टोडरमल जी का सिंहनाद, परम पूज्यश्री कानजीस्वामी का सिंहनाद, जड़मूल से मिथ्यात्व भगाने को अमूल्य रत्न —प्रवचनसार, गाथा 89–90

– जय गुरुदेव!

रात्रि 2.00 से 2.30 तक बजे तक **दिनाँक – 30–5–94**

समयसार, गाथा 6; प्रवचनसार, गाथा 93; नियमसार, गाथा 102; मोक्षमार्गप्रकाशक, पृष्ठ –52, — पात्र जीव को, जिसकी होनहार अच्छी हो — इतना ही यथार्थरूप से जान ले–मान ले तो बेड़ा पार हो जावे।

— जय गुरुदेव – जय गुरुदेव!

जय! परम पूज्यश्री कानजीस्वामी के चरणों में अगणित नमस्कार!

— जय गुरुदेव!

अहा! मुनियों ने जङ्गल में बैठे–बैठे अन्तर में गहरे उतरकर आत्मा को तो साधा ही है और जगत के जीवों के लिए भी उसका स्वरूप परिस्पष्ट कर दिया है। स्वसंवेदन में जिन्होंने सिद्धों से भेंट की और अल्प काल में जो स्वयं सिद्ध हो जाएँगे – ऐसे साधक सन्तों का यह कथन है। इसे पहिचानते ही साधकपना प्रगट होता है और सिद्धों से भेंट होती है।

मङ्गल समर्पण

बाद में विचार

रात्रि 2.30 बजे के बाद **दिनाँक - 30-5-94**

(1) पञ्चास्तिकाय, गाथा 121

(2) द्रव्यसंग्रह, गाथा एक / पहली —

(3) छहढ़ाला में — 'चेतन को उपयोगरूप, विन्मूरत-चिन्मूरत-अनूप; पुद्गल नभ-धर्म-अधर्म काल, इनतैं न्यारी है जीव चाल'।

(4) रत्नकरण्डश्रावकाचार, गाथा 3

(5) तत्त्वार्थसूत्र में पाँचवें अधिकार में से 'सत् द्रव्यलक्षणम्' - 'उत्पादव्यय ध्रौव्ययुक्तं सत्'

(6) पुरुषार्थ सिद्धियुपाय, गाथा 14

(7) कार्तिकेयानुप्रेक्षा में, गाथा 323

(8) पञ्चाध्यायी, गाथा 8

(9) मोक्षमार्गप्रकाशक-ॐ

(I) पंच परमेष्ठी आदर्शमात्र हैं - पृष्ठ 2

(II) जीव का सम्बन्ध, मात्र भावों से ही है।

(III) भली होनहार है - पृष्ठ 17

(IV) 20 पृष्ठ पर, आगमज्ञान ही उपादेय है।

सावधान! सावधान! — यह अवसर मोक्ष का आया है - इसे मत खो देना।

- जय गुरुदेव!

अज्ञानी जीव को समझाने के लिए आचार्यदेव उपदेश देते हैं कि राग-द्वेष की उत्पत्ति, अज्ञान से आत्मा में ही होती है और वे आत्मा के अशुद्धपरिणाम हैं; इसलिए अज्ञान का नाश करो; सम्यग्ज्ञान प्रगट करो; आत्मा ज्ञानस्वरूप है - ऐसा अनुभव करो; परद्रव्य को राग-द्वेष उत्पन्न करनेवाला मानकर, उस पर कोप न करो।

- पण्डित जयचन्द छाबड़ा

दिन में 2.00 बजे **दिनाँक 10-7-94**

मैं जीवतत्त्व हूँ; अजीवतत्त्व नहीं है – ऐसा यथार्थरूप मानते-जानते ही सम्यग्दर्शन हो जाता है।

प्रश्न- सम्यग्दर्शन होते ही क्या-क्या पता चल जाता है ?

उत्तर- (1) सम्पूर्ण जैनदर्शन का सार-हथेली पर रखे आँवले के समान। (2) श्रावकपना, (3) मुनिपना, (4) श्रेणीपना, (5) अरहन्तपना और सिद्धपना क्या है ? अपने से ही स्वयं भासित हो जाता है।

सम्यग्दर्शन से लेकर सिद्धदशा तक सारा रास्ता अरूपी ही है।

इसलिए हे पात्र जीवों ! प्रथम सम्यग्दर्शन प्राप्त करो-करो !

– जय गुरुदेव!

दिनाँक 30-7-94

धर्म करत संसार सुख – धर्म करत निर्वाण।
धर्म पन्थ साधै बिना, नर तिर्यंच समान॥
जो तू चाहे मोक्ष को, सुन ले प्राणी जीव।
मिथ्यामत को छोड़कर, जिनवाणी रस पीव।
तू जीवतत्त्व है, अजीवतत्त्व नहीं है— इतना ही है।

दिन - शुक्रवार **दिनाँक 5-8-94**

पूज्य गुरुदेव! हजारों बार नमस्कार

(1) आज सारा मुमुक्षु समाज, गृहीतमिथ्यात्व की पुष्टि में ही, सारा जीवन मीठा जहर पीने में ही लगा है।

(2) इसका फल सीधा निगोद के टिकट पर दस्तखत कर रहा है।

(3) जरा विचारो, गृहीतमिथ्यात्व का सेवन कैसे हो रहा है ? जीव को विचार भी नहीं है।

अहो ! सन्तों की परम कृपा है कि वे आत्मा को परमात्मा कहकर बुलाते हैं ! पर्याय में पामरपना होने पर भी, उसे मुख्य नहीं करके, सन्त कहते हैं कि हे जीव ! तू तो भगवान है... अति निर्मल है... आनन्दस्वरूप है... तू भी अपने आत्मा को ऐसा ही देख ! तू राग जितना नहीं है; तू तो अनन्त गुण के वैभव से भरा है। जैनमार्ग में ऐसा परमात्मपना बतलाकर, वीतरागी सन्तों ने महा-उपकार किया है।

(4) अरे! बड़े से बड़ा कहलानेवाला, 24 घण्टे गृहीत मिथ्यात्व में ही शान्ति मान रहा है।

इसके अभाव का उपाय — तू जीवतत्त्व है; अजीवतत्त्व नहीं है। — इतना यथार्थ मानते ही-गृहीत-अगृहीत मिथ्यात्व का अभाव होकर, क्रम से मोक्ष की प्राप्ति कर लेता है। **- जय गुरुदेव!**

दिन - शुक्रवार, समय सायं 6 बजे **दिनाँक 5-8-94**

जो परम पूज्य गुरुदेव के भक्त कहलाते हैं, उन्हीं की दुहाई देते हैं -

(1) एक घण्टा शास्त्र में बैठकर एक द्रव्य, दूसरे का कुछ नहीं कर सकता-आदि बातें करें — बाकी 23 घण्टे।

(2) मैं पण्डित कैलाशचन्द्र हूँ, मैं उठता हूँ, मैं घूमने जाता हूँ, मैं शास्त्र प्रवचन करता हूँ, मैंने यह ग्रन्थ बनाये हैं, मैं एक समय रोटी खाता हूँ, मैं 2 दिन उपवास रखता हूँ, मैं बाल-ब्रह्मचारी हूँ, मैं श्रावक हूँ, मैं सम्यग्दृष्टि हूँ, मैंने व्यापार छोड़ दिया है आदि में 24 घण्टे पागल बना फिरता है। कोई पूछे यह क्या? व्यवहार से है। वे सब गृहीतमिथ्यात्व की पुष्टि करके 24 घण्टे निगोद के टिकट पर हस्ताक्षर कर रहे हैं।

इस गृहीत-अगृहीतमिथ्यात्व का अभाव कैसे हो?

मैं जीवतत्त्व हूँ; अजीवतत्त्व नहीं हूँ।

(1) अनादि से अजीवतत्त्व को अपना मानकर, दु:खी हो रहा था।

(2) जब अजीवतत्त्व को अपना नहीं माना, उसी समय अपने जीवतत्व पर दृष्टि आई, सादि-अनन्त सुखी हो गया। तू जीवतत्त्व है, अजीवतत्त्व नहीं है। एक बार मानतो सही! **- जय गुरुदेव!**

मङ्गल समर्पण

वास्तव में कोई भी पर्याय हो, चाहे विकारी हो या अविकारी हो, वह निरपेक्ष है; उसका दूसरा कोई कारण नहीं है क्योंकि एक पर्याय का उसकी पहली पर्याय और अगली पर्याय से सम्बन्ध नहीं है; तब उस पर्याय को दूसरा करे, यह बात कहाँ से आयी? अज्ञानता में से आयी।

- पण्डित कैलाशचन्द जैन

दिनाँक - 1-10-94

चौदह राजू उतंग नभ - लोकपुरुष संठान।
तामें जीव अनादि में, भरमत है बिन ज्ञान॥

क्यों भ्रमता है? अपने को मात्र शरीरादि मानने के ही कारण। जब यह जीव, जिसमें मेरा ज्ञान-दर्शन है, वह मैं हूँ — ऐसा अनुभव करेगा, मोक्षमार्ग में प्रवेश हो गया।

इतना आसान है क्या? अरे भाई! तू जीवतत्त्व है, अजीवतत्त्व नहीं है। — इतना एक बार मान तो सही?

कौन मानेगा? जिसके मोक्ष का किनारा नजदीक आया है — वही मानेगा।

जय पूज्य - गुरुदेव

आपको अनन्त बार प्रणाम - जय गुरुदेव!

सोमवार **दिनाँक - 14-11-94**

(1) तीन काल के जितने समय है, उतनी ही प्रत्येक द्रव्य-गुण में पर्याय हैं।

(2) सारा विश्व अनादि से अनन्त काल तक व्यवस्थित ही है - फिर क्या?

(3) जो ऊपरवाली बातें मान लेता है, वह हमेशा के लिये सुखी हो जाता है।

(4) जो नहीं मानता है, वह दुःखी रहता है।

(5) जाने, सो सुखी; करना-करना माने, सो दुःखी।

(6) जैनकुल, चारों गतियों के अभाव के लिये मिला है।

(7) तू जीवतत्त्व है, अजीवतत्त्व नहीं है। —इतनी-सी ही बात है।

(8) निमित्तरूप से केवलज्ञानी को माने, इधर-वस्तु स्वरूप माने —बेड़ा पार।

- जय गुरुदेव!

अहो! जो इस चैतन्यस्वभाव का भान प्रगट करके, ध्यान में उसे ध्याता है, उसकी महिमा की क्या बात करना! उसने तो कार्य प्रगट कर लिया है; इसलिए वह तो कृतकृत्य है ही, परन्तु जिसने उसके कारणरूप रुचि प्रगट की है, अर्थात् जिसे यह चिन्ता प्रगट हुई है कि अहो! मेरा कार्य कैसे प्रगट हो? मुझे अन्दर से आनन्दकन्द आत्मा का अनुभव कैसे प्रगट हो? उस आत्मा का जीवन भी धन्य है, संसार में उसका जीवन प्रशंसनीय है - ऐसा सन्त-आचार्य कहते हैं।

सम्यग्दर्शन प्राप्त किये बिना, विषय और कषाय की वासना का अभाव नहीं होता है; इसलिए प्रथम सम्यग्दर्शन प्राप्त करना पात्र जीव का प्रथम कर्तव्य है।

– **पण्डित कैलाशचन्द्र जैन**

दिनाँक – 16-11-94

प्रश्न– क्या जीव-पुद्गल को धर्मद्रव्य चलाता है और अधर्मद्रव्य ठहराता है ?

उत्तर– (1) सर्वथा नहीं; परन्तु जब जीव-पुद्गल स्वयं चलते हैं या ठहरते हैं तो धर्म-अधर्मद्रव्य है, इतना व्यवहार से कहा जाता है; उसी प्रकार मुझ आत्मा का अजीवतत्त्व से किसी भी प्रकार का सम्बन्ध नहीं है।

(2) यह अज्ञानी जीव, व्यर्थ में पागल बना फिरता है। सावधान-सावधान।

(3) जीव, मात्र भाव कर सकता है; अज्ञानी की विकारीभावों के साथ मर्यादा है; द्रव्यकर्म-नोकर्म का कर्ता-सर्वथा नहीं है।

(4) जैसे सिद्ध भगवान के साथ अजीवतत्त्व का मात्र ज्ञेय-ज्ञायक सम्बन्ध है; वैसे ही अज्ञानी का भी ज्ञेय-ज्ञायक सम्बन्ध है; मात्र मान्यता का अन्तर है।

(5) तू जीवतत्त्व है – अजीवतत्त्व नहीं है, एक बार निर्णय कर।

– जय गुरुदेव!

प्रश्न– क्या मात्र ज्ञानी-अज्ञानी में मान्यता का ही अन्तर है ?

उत्तर– हाँ भाई ! मान्यता का ही अन्तर है —

A- नास्ति सर्वोऽपि सम्बन्धः — श्री समयसार, कलश 200

B- ज्ञान पर का कुछ भी नहीं कर सकता है। (पाँचवा भाग, पृष्ठ 68 से 72 तक प्रश्नोत्तर 44 से 49 तक देखो)

C- अहो ! अहो ! अचम्भा – अरे भाई ! तुझ आत्मा ने, दूसरे जीवों को तथा अजीवों को स्पर्श भी नहीं किया है।

D- यह जीव, व्यर्थ में अपना समय खो रहा है :- एक बार दृष्टि बदलते ही मोक्ष तेरे साथ है – एक बार अपने को जीवतत्त्व मानें, बेड़ा पार हो गया।

– जय गुरुदेव!

दिनाँक - 22-11-94

एक विचार

पञ्चम काल में पूज्यश्री कानजीस्वामी का योग तीर्थङ्करों के समान था। उनके समय में भी जो नहीं समझा- सब निगोद के पात्र हैं।

(1) मुझे पढ़ाने का भाव है, परन्तु कोई भी पढ़ना नहीं चाहता है - पञ्चम काल की बलिहारी है।

(2) क्यों पढ़ना नहीं चाहते हैं ?

सब लोग अपने को ज्ञानी मानकर बैठ गये हैं, जबकि गृहीतमिथ्यात्व का भी अभाव नहीं है।

(3) मुझे तो देखकर समता आती है।

बस सावधान! सावधान! स्थाप निज को मोक्षपथ में, ध्याय अनुभव तू उसे; उसमें ही नित्य बिहार कर, न विहार कर परद्रव्य में।

जय गुरुदेव-जय गुरुदेव!

ये भाव, हार्ट के ऑपरेशन से पूर्व भी आया था -परन्तु कामयाबी नहीं हुई।

पञ्चम काल की बलिहारी ! **- जय गुरुदेव!**

बिजौलियाँ

दिनाँक - 4-12-94

(1) आज सारे विश्व का मुमुक्षु कहलानेवाला, मेरी-तेरी में ही पागल है।

(2) किसको मुमुक्षु कहे ? कहते शर्म आती है ?

(3) किसी को संसार का डर नहीं हैं; सब संसार बढ़ाने में ही आनन्द-मान रहे हैं।

(4) ज्ञानियों का आदेश है, तू जीवतत्त्व है-अजीवतत्त्व नहीं है।

एक बार हाँ तो कहो-

हे भव्य जीव! एकमात्र अपनी ओर ही लख, वस बहुत हो गया। समय थोड़ा है।

तू साक्षात् भगवान है! तेरा तेरे भगवान के सिवाय दूसरे भगवान से भी सर्वथा सम्बन्ध नहीं है। **- जय गुरुदेव!**

हे जीव! अनन्त काल में महामूल्यवान् यह मनुष्यदेह और सत्समागम प्राप्त हुआ है; इसलिए अब तू अपने आत्मा की समझ कर। आत्मा की समझ किये बिना तूने अनन्त-अनन्त काल, निगोद और चींटी इत्यादि के भव में व्यतीत किया है। अरे! वहाँ तो सत् के श्रवण का अवकाश भी नहीं था। अब यह दुर्लभ मनुष्यभव प्राप्त करके समझ का रास्ता ले। भाई! अन्तर में आत्मा की महिमा आना चाहिए। पैसा, स्त्री इत्यादि की जो महिमा है, वह मिटकर अन्तर में चैतन्यस्वरूप की महिमा का भास होना चाहिए।

मङ्गल समर्पण

मङ्गल समर्पण

सम्यग्दर्शन होने पर नियम से केवलज्ञान की प्राप्ति होती है, चाहे देर लगे; इसलिए जिसकी अन्तरङ्ग श्रद्धा सच्ची है, उसका फल, केवलज्ञान है। सम्यग्दृष्टि के ज्ञान में और केवलज्ञान में जानने में अन्तर नहीं है; मात्र प्रत्यक्ष-परोक्ष का भेद है।

– पण्डित कैलाशचन्द्र जैन

रात्रि 12.00 बजे **दिनाँक 6-12-94**

(1) आत्मा, स्वयं अरूपी; रागद्वेष विकारीभाव भी अरूपी; शुद्धपर्याय-मोक्षमार्ग और मोक्ष भी अरूपी; जो द्रव्यकर्म-नोकर्म दिखता है - जो इनको अपना तथा इनसे-इनके सहारे से मुझे धर्म होगा, वह त्रिकाल, धर्म के लायक नहीं। (2) जो द्रव्यकर्म-नोकर्म को अपना मानता है, वह सर्वज्ञ के मत से बाहर है, वह द्विक्रियावादी है। वह कर्ता-कर्म दो द्रव्यों में मानता है, यह उसका अज्ञान-मोह अन्धकार है, उसका सुलटना दुर्निवार है।

(2) जो शरीर को अपना तथा इन्द्रियों से ज्ञान व सुख मानता है, वह पद-पद पर धोखा खाता है। **- जय गुरुदेव!**

रात्रि 2.00 बजे में **दिनाँक 6-12-94**

ओहो! सारा विश्व, नोकर्म में ही पागल बना फिरता है।

(1) जैसे, रेत से कभी तेल नहीं निकल सकता।

(2) जैसे, पानी में से कभी मक्खन नहीं निकल सकता।

(3) जैसे, विजार, कूँड़े पर सिर मारकर प्रसन्न होता है; उसी प्रकार आज सारा विश्व-ज्ञानियों को छोड़कर — द्रव्यकर्म-नोकर्म में पागल बना फिरता है। यदि अपने को शरीरादि से पृथक ना जाना-माना तो वर्तमान में निगोदिया है और आठ त्रिभाग में आयु का बन्ध हो गया तो निगोद में जाकर पड़ेगा — वहाँ पर कभी सत्यबात का विचार भी नहीं आ सकेगा; अत: सावधान! सावधान! तू जीवतत्त्व है, अजीवतत्त्व नहीं। **- जय गुरुदेव!**

दिनाँक 6-12-94

(1) आज सारा मुमुक्षु समाज, पूज्य श्री गुरुदेव की आड़ में अपनी-प्रसिद्धि में ही पागल है।

(2) बात गुरुदेव की करे, अन्दर प्रसिद्धि अपनी (मुर्दे की) चाहे, वह जीव वर्तमान में मुमुक्षु कहलाने पर भी, निगोद का ही पात्र है।

(3) यदि जीव तू है एकला, तो तज सब परभाव।
ध्याबो आत्मा ज्ञानमय, शीघ्र मोक्ष सुखपाय ॥ 70 ॥

(4) विश्व के प्राणी धर्म को प्राप्त होवे - कैसे होवे ?

तू जीवतत्त्व है, तू अजीवतत्त्व नहीं है — इतना मानते-जानते ही, मोक्षमार्ग पर आ जाता है। **- जय गुरुदेव!**

दिनाँक 7-12-94

(1) जीव, मात्र भाव ही कर सकता है; द्रव्यकर्म-नोकर्म का सर्वथा कर्ता-भोक्ता नहीं।

(2) कर्ता-कर्म एक ही द्रव्य में होता है।

(3) अनादि-निधन वस्तुएँ भिन्न-भिन्न अपनी मर्यादा लिये परिणमै हैं।

(4) सत् द्रव्य लक्षणं; उत्पाद-व्यय-ध्रौव्ययुक्तं सत्।

(5) स्व-पर का भेदविज्ञान ही धर्म का कारण।

(6) तू जीवतत्त्व है - अजीवतत्त्व नहीं है।

(7) प्रत्येक द्रव्य अपने गुण-पर्याय को ही स्पर्श करता है।

(A) याद रहे - उपर लिखित किसी को भी जब यह जीव यथार्थ मानेगा, उसी समय सारा जैन-शासन, इसके हाथ आ जावेगा। वह —

(B) मोक्षमार्ग में आ गया -

(C) जिसके मोक्ष का किनारा नजदीक आया है, उसे ही ऊपर लिखित बातें ठीक लगेंगी।

परम पूज्यश्री कानजीस्वामी के चरणों में अगणित नमस्कार।

- जय गुरुदेव!

जङ्गल में बसनेवाले और आत्मा के आनन्द में झूलते हुए सन्तों ने स्वानुभव में भगवान के साथ बातें करते-करते यह बात लिखी है। अहो! इस पञ्चम काल में ऐसे मुनि हुए, अहो! इन सन्त महन्त के चरणों में भाव-नमस्कार है। वाह! उनकी अन्तरदशा!! पञ्च परमेष्ठी में जिनका स्थान है, वे कुन्दकुन्द भगवान इस भरतक्षेत्र में विचरते होंगे, उस समय तो मानो चलते-फिरते सिद्ध! जिनके दर्शन से मोक्षतत्त्व प्रतीति में आ जाए, उनके द्वारा कथित यह एक ही रास्ता संसार से बाहर निकलने का है; अन्य कोई रास्ता नहीं है।

मङ्गल समर्पण

दिनाँक 14-12-94

(1) ओ हो! पञ्चम काल में अमृतवर्षा!! जितना विश्व में अजीवतत्त्व है, उसमें विश्व के मिथ्यादृष्टि पागल बने हुए हैं।

(2) सुबह से शाम तक 24 घण्टे सारा पुद्गल का खेल दीख रहा है - अरे जीव! तेरा इससे किसी भी अपेक्षा सर्वथा सम्बन्ध नहीं है।

(3) तू साक्षात् भगवान है - उसका पता न होने से, अर्थात् अजीवतत्त्व में अपनापना मानने के कारण, वह दृष्टि में नहीं आता।

(4) हे जीव! तू जिसके लिये व्यर्थ में जीवन खो रहा है, यह सब नाटक है। जिसमें कुछ कर ही नहीं सकता, उसमें पागल हो रहा है। स्पर्शादि 27 पर्यायें, सर्वथा पुद्गल की ही हैं, तेरा इनसे सम्बन्ध नहीं है।

(5) आज 70 वर्षों में पूज्य श्री कानजीस्वामी ना होते तो तू ज्ञायक भगवान है — ऐसा, सुना भी ना होता। वस, तू साक्षात् भगवान है।

- जय गुरुदेव!

निज दर्शन ही श्रेष्ठ है, अन्य न किञ्चित् मान।
हे योगी! शिव हेतु ए - निश्चय से तू जान॥

रात्रि 2 बजे का विचार **दिनाँक 17-12-94**

जय समयसार- जय समयसार!

[अनन्त ज्ञानियों का एक मत; एक मिथ्यादृष्टि के करोड़ मत]

(1) जो अनादि से तीर्थङ्करों की दिव्यध्वनि में आया - वर्तमान में वही बात सीमन्धरभगवान विदेहक्षेत्र में अमृतवर्षा कर रहे हैं- वही बात भविष्य में भावी तीर्थङ्करों की दिव्यध्वनि में आवेगी - उसी बात को परमपूज्य श्री कानजीस्वामी सोनागढ़ से बतलाकर चले गये।

(2) आज विचार आया - पूज्यश्री कानजीस्वामी की आड़ में - तीर्थङ्करों की आड़ में, मुमुक्षु कहलानेवाले गृहीतमिथ्यात्व में इतने लिप्त हैं — उन्हें सत्य बात को कोई कहे तो वह बिलबिला जाते हैं।

उपदेश में कोई उपादेय, कोई हेय तथा कोई ज्ञेय तत्वों का निरुपण किया जाता है; वहाँ उपादेय-हेय तत्वों की तो परीक्षा कर लेना क्योंकि इनमें अन्यथापना होने से अपना बुरा होता है। उपादेय को हेय मान ले तो बुरा होगा; हेय को उपादेय मान ले तो बुरा होगा।

- आचार्यकल्प पण्डित टोडरमल

(3) वर्तमान में चारों अनुयोगों में जो ज्ञानियों ने कहा है - उस पर चलकर आत्मकल्याण में लग जाना चाहिए।

(4) परम पूज्यश्री कानजीस्वामी के जो प्रवचन है, वह एक अलौकिक निधि है।

(5) ज्यादा चक्कर में ना पड़कर, श्री समयसार-प्रवचनसार, नियमसार-अष्टपाहुड़-पञ्चास्तिकाय-मोक्षमार्गप्रकाशक व परम पूज्यश्री गुरुदेव के प्रवचन में सारा जैनदर्शन का निचोड़ है।

- जय गुरुदेव!

दिनाँक 18-12-94

प्रश्न- यह जीव अनादि से दु:खी क्यों है?

उत्तर- (1) एकमात्र शरीरादि को अपना मानने के कारण ही दु:खी है। जब जिस समय, कहीं भी हो, यह जीव, शरीरादि से निज जीवतत्त्व को भूतार्थरूप से भिन्न जानेगा, तभी सम्पूर्ण दु:ख का अभाव हो जावेगा।

(2) अपने को भूला, पर में अपनापना माना।

(3) साक्षात् भगवान प्रगट है परन्तु शरीरादि की आड़ में वह दृष्टि में नहीं आता है।

(4) जैनकुल मिलने पर भी न समझा तो जीवन को करोड़ो बार धिक्कार है। यह अवसर फिर नहीं आने का है। सावधान! सावधान!!

- जय गुरुदेव!

दिनाँक - 20-12-94

विश्व में जितने भी द्रव्य हैं, उनकी अनादि अनन्त व्यवस्था किस प्रकार है, अर्थात् वे अनादि से क्या करते हैं?

प्रत्येक द्रव्य का द्रव्य-गुण, अनादि-अनन्त वैसा का वैसा पड़ा है; पर्याय का जन्मक्षण है, वह भी ऐसा का ऐसा पड़ा है —एक बार मान तो सही!

वस्तु विचारत ध्यावतें, मन पावे विश्राम; रस स्वादत सुख उपजें, अनुभव याको नाम। **- जय गुरुदेव!**

'एक होय तिन काल में परमारथ का पन्थ।' तीनों काल मुनिपना एक ही प्रकार का होता है। जैसे, वस्तु का मूलस्वरूप तीनों काल पवित्र और शुद्ध एक ही प्रकार का होता है; उसी प्रकार उसके अवलम्बन से प्रगट होनेवाली पवित्रता और शुद्धता/मुनिदशा भी तीनों काल एक प्रकार ही होती है। शुभयोग से, शुभभाव से वह पवित्रदशा प्रगट नहीं होती। शुभराग तो निमित्त के आश्रय से प्रगट होता है, वह कहीं आत्मा का स्वरूप नहीं है।

दिनाँक - 21-12-94

जब माने, तभी मोक्षमार्ग है

(1) हे संसार के प्राणियो!

तुम्हारी निज आत्मा का, विश्व के किसी भी द्रव्य से, किसी भी अपेक्षा, सर्वथा सम्बन्ध नहीं है — 'नास्ति सर्वोऽपि सम्बन्ध:' — निज आत्मतत्व का।

एक बार तो मान तो सही! मानते ही तू मोक्षमार्ग में आ गया।

(2) अनादि काल से अकेला ही है, अकेला ही रहेगा; व्यर्थ में परद्रव्यों में अपनापना मानकर पागल बना फिरता है।

(3) एक बार निर्णय कर, तू जीवतत्त्व है, तेरे जीवतत्त्व का किसी के साथ सर्वथा सम्बन्ध नहीं है। **- जय गुरुदेव!**

दृष्टान्त-सिद्धान्त समझाने का **दिनाँक 24-12-94**

(1) जैसे, लड़की, माँ-बाप, भाई-बहिन-मामा-चाचा-ताऊ आदि परिवार में पागल बनी फिरती है; उसी प्रकार अज्ञानी, अनादि से द्रव्यकर्म-नोकर्म में पागल बना फिरता है।

(2) लड़की का रिश्ता हो गया, बाप-माँ आदि से सम्बन्ध छूट गया और पतिदेव से सम्बन्ध जुड़ गया, वह पति में ऐसी पागल हो गयी — उसे कुछ दिखता ही नहीं; कीमत पति की ही है; उसी प्रकार सम्यक्त्व होते ही निज आत्मा पर दृष्टि आ गयी — तब सारा विश्व भिन्न हो गया; कीमत मात्र अपनी आत्मा की ही भासित होती है।

अब, ज्ञानी को जैसे-जैसे अपनी आत्मा में एकाग्रता होती जाती है, आनन्द करता हुआ — मोक्ष की प्राप्ति हो जाती है।

क्या द्रव्यकर्म-नोकर्म नहीं हैं?

अरे! भाई हैं, परन्तु द्रव्यकर्म-नोकर्म से आत्मा का सम्बन्ध नहीं है। जीव में अज्ञानता इतनी ही है — 'ये मेरे, और मैं इनका' और कुछ नहीं।

प्रश्न- हमें अपने में एकाग्रता क्यों नहीं होती?

उत्तर- जब तक सम्यक्त्व नहीं होगा, जैनदर्शन कोई भी बात की समझ में नहीं आ सकती है; अत: हे भाई! तू जीवतत्त्व है, अजीवतत्त्व से तेरा सर्वथा

मङ्गल समर्पण

हेय-उपादेय के विवेक का फल, सर्वज्ञ से स्वयं जाना हुआ होने से, सर्व प्रकार से अबाधित है। ऐसा शब्द, प्रमाण को प्राप्त कर क्रीड़ा करने पर, उसके संस्कार से विशिष्ट संवेदन शक्तिरूप सम्पदा (सम्यग्दर्शन) प्रगट होता है।

- आचार्य अमृतचन्द्र

सम्बन्ध नहीं है, जब ऐसा यथार्थ श्रद्धान होगा, तब सारा जैनदर्शन तेरे सामने आ जावेगा। सम्यक्त्व होते ही सारा जैनदर्शन, केवली के समान, ज्ञानी की दृष्टि में आ गया; मात्र प्रत्यक्ष—परोक्ष का ही भेद है।

यह कार्य आसान है, सहजरूप है; तुझे इतना ही करना है कि विश्व में जीवतत्त्व भी और अजीवतत्त्व भी हैं, परन्तु तेरा अजीवतत्त्व से किसी भी अपेक्षा सम्बन्ध नहीं है।

द्रव्यकर्म, नोकर्म हैं — ये यह बताते हैं कि यह मूर्ख हमें अपना मानता है। हम तो जड़ हैं, ये चेतन है; इस चेतन को शर्म नहीं आती, हमें व्यर्थ में बीच में घसीटता है। जड़-चेतन की सब परणति प्रभु अपने-अपने में होती है।

यदि यह जीव, परम पूज्यश्री कानजीस्वामी का योग बनने पर भी नहीं समझा तो यह ढ़ीठ है — होनहार खराब है। अरे! भाई! तू साक्षात् भगवान है, एक बार अजीवतत्त्व को भिन्न मानकर देखे तो सही — तुझे किसी से पूछना नहीं पड़ेगा।

'मैं भूल स्वयं के वैभव को, पर ममता में अटकाया हूँ।' व्यर्थ में दु:ख पा रहा है। कोई द्रव्यकर्म-नोकर्म किसी को दु:ख-सुख नहीं देते हैं। यह पागल उन्हें सुख-दु:ख का कारण मानकर, चारों गतियों में भ्रमण करता है।'

याद रखो- तू साक्षात् भगवान जीवतत्त्व है, तू अजीवतत्त्व नहीं है। सावधान! सावधान!

– जय गुरुदेव!

मुनिराज को देह में भी उपशमरस बरसता है, शरीर भी शान्त... शान्त... शान्त। अरे! वचन में भी कहीं चपलता अथवा चञ्चलता दिखायी नहीं देती – ऐसे शान्त होते हैं। उन मुनिराज को निर्ग्रन्थ गुरु कहा जाता है। उनको देह की नग्नदशा निमित्तरूप होती ही है परन्तु वह अथवा पञ्च महाव्रत के शुभविकल्प भी चारित्र नहीं हैं, उनसे मोक्ष नहीं है; मोक्ष तो अन्दर शुद्धात्म द्रव्यसामान्य के उग्र अवलम्बन से प्रगट होनेवाली स्वरूप – स्थिरता से ही होता है। वह स्वरूपस्थिरता उस मुनिदशा में है। अन्तरङ्ग में प्रगट होनेवाली वह सहजमुनिदशा अद्भुत है। मुनिराज की मुद्रा भी शान्तरस से नितरती होती है। अहा! ऐसी बात है।

मङ्गल समर्पण

यह अमूर्तिक आत्मा, वह मैं हूँ और यह समान क्षेत्रावगाही शरीरादिक पर हैं तथा यह उपयोग, वह मैं हूँ और यह उपयोगमिश्रित मोह-राग-द्वेषभाव, ये पर हैं - ऐसा स्व-पर का भेदविज्ञान होता है तथा आगम-उपदेशपूर्वक स्वानुभव होने से 'मैं ज्ञानस्वभावी एक परमात्मा हूँ' - ऐसा परमात्मा का ज्ञान होता है।

- **आचार्य जयसेन**

दिनाँक 24-12-94

अरे भाई!

(1) कर्ता-कर्म एक ही द्रव्य में होता है।

(2) निमित्त-नैमित्तिकसम्बन्ध, दो पर्यायों की स्वतन्त्रता का ज्ञान कराता है।

(3) अज्ञानी, निमित्त-नैमित्तिक को कर्ता-कर्म मानता है। जबकि दो द्रव्यों में कर्ता-कर्मसम्बन्ध सर्वथा नहीं है।

(4) जो दिखता है, सारा कार्य पुद्गल का ही है; व्यर्थ में अपनापना मानकर दु:ख पा रहा है।

(5) जैसे कुत्ता, गाड़ी के नीचे चलता है; जैसे, कुत्ता हड्डी चबाता है, वैसे ही अज्ञानी जीव, कुत्ते के समान व्यर्थ में पर का कर्ता और भोक्ता बनना मानता है; है नहीं। कर विचार तो पाम।

(6) परम पूज्य गुरुदेव तो चले गये, अब तो सब जगह काम-भोग की ही बात चलती है; आत्मा से सर्वथा सम्बन्ध नहीं है।

(7) जैनकुल और पूज्यश्री गुरुदेव का समागम, फिर इधर-उधर का भटकता है। आश्चर्य-आश्चर्य। अरे भाई! सातवें नरक में, स्वयंभूरमण में भी यह कार्य हो सकता है। तू अपने को संज्ञी कहलाने पर भी, तू जीवतत्त्व है, तू अजीवतत्त्व नहीं है — इतना एक बार मान तो सही, फिर किसी से पूछना नहीं पड़ेगा।

- जय गुरुदेव!

दिनाँक 24-12-94

(1) मैं 38 वर्ष से बाहर गया, बड़े-बड़े त्यागी पण्डित नाम घरानेवाले मिले।

(2) मुमुक्षु नाम धरानेवाले —मेरी बात को ऊपर-ऊपर से हाँ करनेवाले मिले।

(3) देहरादून - बिजौलिया आदि सब जगह मेरी बात बड़े प्रेम से सुनते हैं परन्तु अपने हृदय में नहीं बैठाते हैं।

(4) पवन मेरा लकड़ा कहलाता है, उसे भी कहना आ गया — परन्तु

अन्तर में नहीं उतारता है - अरे भाई! यदि अब समझ में नहीं आया तो सारा सिद्धालय आ जावे, तुझे वह भी नहीं समझा सकता।

(5) मैं तो जो पूज्य गुरुदेव से समझा, वह सब इन सात भागों में आ गया। अतः पात्र जीवों को चाहिए — इन भागों का प्रेम से स्वाध्याय करके आत्मसम्मुख होवे।

(6) जो मेरे ध्यान में आता है, वह कॉपी में लिख देता हूँ — मैं किससे बात करूँ? कोई पात्र देखने में नहीं आता।

अहो! मेरे लिये तीर्थङ्करों के समान परम पूज्यगुरुश्री कानजीस्वामीजी, आप मेरे भगवान हो — मुझे राग आता है, जो मैंने आप से सीखा है, सबको सिखाऊँ, परन्तु कोई सीखना नहीं चाहता है।

(7) संज्ञी पञ्चेन्द्रियपना, मात्र सुखी होने के लिये मिला है। कितना अचम्भा है! स्वयं भगवान है। तेरे भगवान से अजीव शरीर का सर्वथा सम्बन्ध नहीं है — इसको विचार भी नहीं आता।

(8) प्रवचनसार की 90 की गाथा, सारे शास्त्रों का सार है — इतना होने पर भी ना समझा।

(9) सारा मोक्षमार्गप्रकाशक अमृत की घूँट है।

सावधान! सावधान! **- जय गुरुदेव!**

(1) आपने 'अन्त में' — ऐसा क्यों लिखा?

अरे भाई! मैं यहाँ से कब चला जाऊँ? — इसका भरोसा नहीं है; अतः 'अन्त में' लिखा है।

(2) आज सारा विश्व मेरी-तेरी में डूबा हुआ दुःखी हो रहा है। एकमात्र जब कभी-भी किसी भी समय यह 'मैं जीवतत्त्व हूँ; अजीवतत्त्व नहीं हूँ।' — ऐसा मानेगा, तभी सुखी हो जावेगा।

(3) पञ्चम काल में पूज्यश्री कानजीस्वामी का होना अचम्भा है।

(4) अरे! कोई और कहनेवाला भी नहीं दिखता है। बस, हे गुरुदेव! मैं आपके चरणों में अगणित नमस्कार करता हूँ। क्षमा-क्षमा-क्षमा।

- जय गुरुदेव!

'कर्म, जीव को चतुर्गति में ले जाते हैं' — यह कथन जीव एवं कर्म के बीच परस्पर निमित्त-नैमित्तिकसम्बन्ध की दृष्टि से किया गया है, किन्तु ज्ञाता-दृष्टा जीवस्वभाव की दृष्टि से तो जीव का गतियों में आना-जाना है ही नहीं। जीवस्वभाव तो अनादि संसार में वैसा का वैसा ही रहा है।

मङ्गल समर्पण

जय पूज्य श्री गुरुदेव — जय जय जय! **दिनाँक 26-12-94**

निश्चय से तो निज आत्मा कैलाशचन्द्र आदि परद्रव्यों से सर्वथा भिन्न, स्वभावों से अभिन्न, स्वयं सिद्ध वस्तु है।

(1) निज आत्मा, ज्ञान-दर्शनादि अनन्त-गुणों से अभिन्न, स्वयं सिद्ध वस्तु है और कैलाशचन्द्र आदि (अजीवतत्त्व) परद्रव्यों से सर्वथा सम्बन्ध नहीं है, यह बात यथार्थ है।

(2) परन्तु अपनी मूर्खता से कैलाशचन्द्र आदि परद्रव्यों को अपना मानता है; अपने है नहीं।

(3) अपने मानता है — यह बीमारी है।

(4) मुझ आत्मा, ज्ञान-दर्शनादि स्वभावों से अभिन्न जीवतत्त्व है — ऐसा मानते-जानते ही चारों गतियों का अभाव हो जाता है। **- जय गुरुदेव!**

दिनाँक 26-12-94

छहढ़ाला में

(1) देह-जीव को एक गिने - एक है नहीं, 'एक गिने' — यह बीमारी है।

(2) जिसमें मेरा ज्ञान-दर्शन है, वह जीवतत्त्व मैं हूँ — ऐसा मानते-जानते ही मोक्षमार्ग प्रकट हो जाता है।

(3) मैं जीवतत्त्व हूँ, अजीवतत्त्व से मेरा सर्वथा सम्बन्ध नहीं है — ऐसा यथार्थ मानते ही निश्चय सम्यक्त्व की प्राप्ति हो जाती है।

(4) यह जीव व्यर्थ में भटक रहा है।

(5) हे परम पूज्य गुरुदेव! तुम्हें अनन्त नमस्कार। तुम मेरे तारणहार हो। **- जय गुरुदेव!**

तत्त्वार्थश्रद्धान का नाम सम्यग्दर्शन है। अथवा तत्त्वों में रुचि होना ही सम्यक्त्व है। अथवा प्रशम, संवेग, अनुकम्पा और आस्तिक्य की अभिव्यक्ति ही जिसका लक्षण है, वही सम्यक्त्व है।

- आचार्य वीरसेनस्वामी

दिनाँक- 1-1-95

प्रश्न- अध्यवसान के कितने अर्थ हैं ?

उत्तर- (1) कर्म के उदय को अध्यवसान कहते हैं। जो निमित्तरूप है।

(2) परसन्मुखता से होनेवाले परिणाम को एकत्वबुद्धि की अपेक्षा अध्यवसान कहा है, जो बन्ध का कारण है।

(3) पर में एकत्वबुद्धि हुए बिना जो अस्थिरता का राग होता है, उसे भी अध्यवसान कहते हैं। इसमें मिथ्यात्व का बन्ध नहीं होता, परन्तु अल्प राग का बन्ध होता है, उसे गौण करके 'बन्ध नहीं होता' —ऐसा कहते हैं।

(4) स्वभावसन्मुख परिणाम को भी स्वभाव में एकत्वबुद्धि होने से अध्यसान कहते हैं, परन्तु यह अध्यसान, मोक्ष का ही कारण है।

प्रश्न- कलश 173 पर चारों अध्यसान लगाकर समझाओ ?

उत्तर- मैं कैलाशचन्द्र हूँ। मेरा देव है, मेरा गुरु है — यह मेरे हैं, मैं इनका हूँ।

(अ) इसमें कैलाशचन्द्र, देव-गुरु, यह निमित्त हैं। (आ) यह मैं हूँ, यह मेरे हैं — यह मिथ्या अध्यवसाय है, यह मिथ्यादृष्टि का भाव है।

(2) ज्ञानी को अस्थिरता सम्बन्धी राग, वह भी अध्यवसान है, यह मोक्षमार्गी को होता है।

(3) कैलाशचन्द्र आदि परद्रव्यों से सर्वथा भिन्न, ज्ञान-दर्शनादि स्वभावों से अभिन्न, स्वयं-सिद्ध वस्तु निज आत्मा के आश्रय से शुद्धदशा प्रगट करके — इसमें पूर्ण स्थिरता करके, केवलज्ञान क्यों प्रगट नहीं करता है ? — ऐसा कहकर आचार्य भगवान ने खेद प्रगट किया है।

(1) कैलाशचन्द्र आदि परद्रव्य — निमित्त अध्यवसान।

(2) कैलाशचन्द्र आदि मैं एकत्वबुद्धि, यह मिथ्या अध्यवसान।

(3) अपने स्वभाव का आश्रय लेकर एकदेश स्वभाव अर्थपर्याय प्रगटी, उसे अस्थिरता का राग, यह अध्यसान है।

(4) अपने में पूर्ण स्थिरता करके, केवलज्ञानादि प्रगट करना, यह भी अध्यसान है। यह मोक्षरूप है।

प्रश्न- क्या 173 कलश में चार प्रकार के अध्यवसान आये हैं ?

उत्तर- हाँ आये हैं :-

हे भाई! अपनी बुद्धि से देह और रागादिक को अपना मानकर, उनका तो तूने अनन्त काल से अभ्यास किया है, तथापि चैतन्यविद्या प्राप्त नहीं हुई और तेरा आत्मा अनुभव में नहीं आया तथा तू अज्ञानी ही रहा... इसलिए अब अपनी इस मिथ्याबुद्धि को छोड़कर, जिस प्रकार हम कहते हैं, उस प्रकार अभ्यास कर। ऐसे अभ्यास से छह महीने में तो तुझे अवश्य चैतन्यविद्या प्राप्त होगी... छह महीने तक लगनपूर्वक अभ्यास करने से तुझे अवश्य आत्मा का अनुभव होगा। भाई! छह महीना तो हम अधिक से अधिक कहते हैं, यदि तू उत्कृष्ट आत्मलगनपूर्वक प्रयत्न करेगा, तब तो दो घड़ी में ही तुझे आत्मा का अनुभव हो जाएगा।

मङ्गल समर्पण

(1) परद्रव्य का होना, कर्म का उदय अध्यवसान।

(2) पर में एकत्वबुद्धि, मिथ्या अध्यवसान है।

(3) ज्ञानी को अस्थिरता सम्बन्धी राग, यह भी अध्यवसान है।

(4) अपने पूर्ण क्षायकदशा प्रगट होना यह भी अध्यवसान है।

(यही बात मोक्षमार्गप्रकाशक, पृष्ठ 226में भी आयी है।)

- जय गुरुदेव!

दिनाँक 2-1-95

प्रश्न- अंजन चोर पर चारों अध्यवसान लगाकर समझाओ?

उत्तर- (1) अंजन चोर ने हर एक प्रकार के पाप किये (अ) अंजन चोर तथा दूसरे अजीवतत्त्व उसमें निमित्त हुए, यह कर्म का उदय, अध्यवसान है।

(आ) मैं अंजन चोर हूँ — मैं दूसरों को मारता हूँ, जिलाता हूँ, चोरी करता है आदि भावों में पागल था, यह मिथ्या अध्यवसान है।

(ई) अकृत्रिम चैत्यालय में मुनियों से कहा, मुझे दीक्षा दो तो वह सम्यग्दृष्टि-श्रावक-मुनिपने को प्राप्त हुआ — उस समय शुद्धि के साथ पराश्रित व्यवहार था — वह राग, अध्यवसान हुआ।

(इ) बाद में अंजन चोर आदि परद्रव्यों से सर्वथा भिन्न, ज्ञान-दर्शनादि अभेद स्वभाव जो स्वयं सिद्ध सत् ज्ञायक आत्मा है, उसमें ऐसा लीन हुआ कि मोक्ष हो गया — यह अध्यवसान हुआ।

सम्यक्त्व का प्रतिपक्षी मिथ्यात्वभाव, अत्यन्त अप्रशस्त है, और उसके निमित्त से बँधनेवाला मिथ्यात्वकर्म अत्यन्त अप्रशस्त है।
चौथे गुणस्थान से चौदहवें गुणस्थान तक सर्व जीवों को सम्यक्त्व समान है।

- आचार्य वीरसेनस्वामी

दिनाँक 2-1-95

प्रश्न- गौतम गणधर पर लगाइयेगा ?

उत्तर- (1) भगवान महावीर के पास आने से पूर्व, द्रव्यकर्म-नोकर्म आदि परद्रव्य में लगा था —यह कर्म का उदय, अध्यवसान है।

(2) परद्रव्यों में एकत्वबुद्धि से चौबीस घंटे आकुलित था, यह मिथ्या अध्यवसान हुआ।

(3) भगवान महावीरस्वामी के समीप आने पर, तुरन्त सम्यग्दर्शन, श्रावकपना, मुनिपना, गणधरपना प्राप्त किया, वहाँ जो अस्थिरता सम्बन्धी राग था — वह पराश्रित अध्यवसान हुआ।

(4) फिर भगवान महावीर के मोक्ष जाने के बाद, ज्ञान-दर्शनादि अभेद स्वयं सिद्ध सत् ज्ञायक में ऐसा लीन हुआ — सिद्धदशा की प्राप्ति की, यह अध्यवसान हुआ।

अहा! देखो तो सही, यह चैतन्य के अनुभव का मार्ग! कितना सरल और सहज! चैतन्य का अनुभव, सहज और सरल होने पर भी दुनिया के व्यर्थ के कोलाहल में जीव रुक गया होने से उसे वह दुर्लभ हो गया है।

दिनाँक 2-1-95

प्रश्न- चार अध्यवसान को स्पष्ट समझायेगा।

उत्तर- (1) यह अज्ञानी, अनादि से अजीवतत्त्व के निमित्त चौबीस घंटे पागल बना रहता है।

(अ) इसमें - कर्म का उदय अध्यवसान हुआ। (आ) पागल बना रहा - मिथ्या अध्यवसान हुआ। (इ) ज्ञानी बन गया, तब राग-पराश्रित अध्यवसान हुआ। (ई) पूर्ण शान्ति मोक्ष हुआ — स्वाश्रित अध्यवसान हुआ।

प्रश्न- (1) अज्ञानी को अनादि से कौन-कौन सा अध्यवसान बर्तता है ?

उत्तर- कर्म का उदय अध्यवसान और मिथ्या अध्यवसान ही वर्तता है।

प्रश्न- (2) ज्ञानी को छद्मस्थदशा में कौन-सा अध्यवसान वर्तता है ?

उत्तर- जो अस्थिरता का राग है, वह पराश्रित अध्यवसान है और साथ में शुद्धि है, वह स्वाश्रित अध्यवसान है।

प्रश्न- (3) पूर्णता होने पर कौनसा अध्यवसान रहता है ?

उत्तर- (3) पूर्ण स्वाश्रित अध्यवसान ही रहता है।

- जय गुरुदेव!

सुखी होने का उपाय

प्रश्न- (1) प्रत्येक जीव, अनादि-अनन्त कैसा है ?

उत्तर- प्रत्येक आत्मा, अजीवतत्त्व से सर्वथा भिन्न, ज्ञान-दर्शनादि गुणों से अभिन्न स्वयं सिद्ध सत् है।

प्रश्न- (2) जीव, अनादि से दु:खी क्यों है ?

उत्तर- एकमात्र अजीवतत्त्व को अपना मानने के ही कारण ही दु:खी है।

प्रश्न- (3) क्या अजीवतत्त्व के कारण दु:खी है ?

उत्तर- बिल्कुल नहीं; मात्र-अजीवतत्त्व को अपना मानने कारण ही दु:खी है; अजीवतत्त्व के कारण नहीं।

प्रश्न- (4) सुखी कैसे हो ?

उत्तर- अजीवतत्त्व को अपना न माने, तभी सुखी हो जाता है।

प्रश्न- (5) अजीवतत्त्व का संयोग भी रहेगा, तब तक जीव सिद्ध नहीं होगा, तो क्या अजीवतत्त्व, सिद्धदशा को रोकता है ?

उत्तर- बिल्कुल नहीं, परन्तु अजीवतत्त्व यह बताता है, अभी इसमें कमी है, वह कभी कराता नहीं है।

प्रश्न- (6) क्या करना ?

उत्तर- करना-करना मरना है। तू साक्षात् भगवान है। तेरा अजीवतत्त्व से किसी भी अपेक्षा, किसी भी प्रकार से सर्वथा सम्बन्ध नहीं है — एक बार 'सर्वथा सम्बन्ध नहीं है' — एक बार यथार्थ रूप से मानकर देखे तो सही, फिर किसी से पूछना नहीं पड़ेगा।

प्रश्न- (7) करने-धरने का प्रश्न क्यों उपस्थित होता है ?

उत्तर- अपने को अजीवतत्त्व मानने से ही करने-धरने प्रश्न उपस्थित होता है।

तू साक्षात् भगवान है — तेरे भगवान से अजीवतत्त्व का सर्वथा सम्बन्ध नहीं है।

- जय गुरुदेव!

मङ्गल समर्पण

मिथ्यात्व, अविरति, प्रमादि आदि को जीवत्व नहीं है। मिथ्यात्व, अविरति, प्रमाद आदि में मङ्गलपना सिद्ध नहीं हो सकता, क्योंकि उसमें जीवत्व का अभाव है। मङ्गल तो जीव ही है और वह जीव, केवलज्ञानादिक अनन्त धर्मात्मक है।

- आचार्य वीरसेनस्वामी

दिनाँक - 5-1-1995

(1) वास्तव में निज आत्मा, कैलाशचन्द्र आदि परद्रव्यों से सर्वथा भिन्न, ज्ञान-दर्शनादि स्वभावों से अभिन्न, स्वयं सिद्ध भगवान है।

(2) इसको भूलकर तथा जिनको पता है, उनको बतलाने पर भी — यह अज्ञानी :—

(I) शरीरादि कि अजीवतत्त्व में ही 'ये मेरे है - मैं इनका हूँ' — सारा जीवन पूरा करके निगोद चला जाता है।

(II) यदि यह ध्यान आ जावें कि कैलाशचन्द्र आदि परद्रव्यों से सर्वथा भिन्न, मैं ज्ञान-दर्शनादि स्वभावों से अभिन्न स्वयं सिद्ध सत् भगवान हूँ — तो मोक्षमार्ग खुल गया।

- जय गुरुदेव!

दिनाँक - 7-1-95

प्रश्न- सम्पूर्ण बीमारियों के दूर करने का अमूल्य उपाय क्या है ?

उत्तर- वास्तव में निज आत्मा, कैलाशचन्द्र आदि परद्रव्यों से सर्वथा भिन्न, ज्ञान-दर्शनादि स्वभावों से अभिन्न, स्वयं सिद्ध वस्तु है — ऐसा मानते-जानते ही सम्पूर्ण बीमारियों का जड़मूल से नाश हो जाता है।

प्रश्न- बीमारी क्या है ?

उत्तर- एकमात्र पर में एकत्वबुद्धि ही बीमारी है।

हे पूज्य गुरुदेव! आप तो चले गये, अब कोई कहनेवाला-सुननेवाला नहीं है। **- जय गुरुदेव!**

दिनाँक - 10-1-95

(1) स्वयं जीवतत्त्व है — इसका पता नहीं है।

(2) अजीवतत्त्व है मैं हूँ और चौबीस घंटे उठना आदि — भोग आदि, सर्वथा पुद्गल का कार्य है- उसे न मानकर 84 लाख योनियों में भ्रमण करता है। जैसे विजार, कूँड़े के ढ़ेर पर अपना सिर मानकर मैंने बहुत किया - ऐसी दशा विश्व के अज्ञानियों की है। **- जय गुरुदेव!**

अरे! सम्पूर्ण जीवन, विषयकषाय में बिताया, शरीर की सेवा में जीवन बिताया और आत्मा की दरकार किये बिना जीवन को धूलधानी कर दिया, तथापि यदि वर्तमान में उस रुचि को बदलकर, आत्मा की रुचि करे तो यह समझा जा सकता है और अपूर्व कल्याण होता है। अन्तरस्वभाव के अवलोकन से आठ वर्ष की बालिका को भी ऐसा आत्मभान होता है; इसलिए 'हमें यह नहीं समझ में आ सकता' — ऐसा नहीं मानना चाहिए। समस्त आत्माएँ चैतन्यस्वरूप हैं और पूरा-पूरा समझ सके — ऐसी सामर्थ्य प्रत्येक आत्मा में विद्यमान है।

मङ्गल समर्पण

दिनाँक 11-1-95

(1) अपनी पर्याय का पर की ओर रुझान —मिथ्यादृष्टि।

(2) अपनी पर्याय का अपनी ओर एकदेश रुझान — सम्यग्दृष्टि।

(3) अपनी पर्याय का परिपूर्ण अपनी ओर रुझान — परमात्मा।

(4) संसार भी अपनी मूर्खता ही है; पर के कारण नहीं।

(5) मोक्षमार्ग अपने ही कारण है; पर के कारण नहीं।

(6) मोक्ष भी अपने ही कारण है; पर के कारण नहीं।

(7) मैं भूल स्वयं के वैभव को, पर ममता में अटकाया हूँ।

(8) अब निर्मल सम्यक् नीर लिये, मिथ्या मल धोने आया हूँ।

(9) पूर्ण अपने में रहना ही परमात्मापना है।

जैसा वस्तुस्वरूप है, वैसा माने तो सम्पूर्ण दुःख का अभाव हो जाता है। देखै :-

(1) समयसार, गाथा 3; (2) मोक्षमार्गप्रकाशक, पृष्ठ 52 (3) प्रवचनसार, गाथा 93; (4) तत्त्वार्थसूत्र 29-30 वाँ सूत्र; (5) छहढ़ाला—तास ज्ञान को कारण, स्वपर विवेक बखानो **- जय गुरुदेव!**

दिनाँक 15-1-95

(1) जिसके साथ सम्बन्ध है, उसका पता ही नहीं।

(2) जिनके साथ सम्बन्ध नहीं है, व्यर्थ में उन्हीं में पागल बना फिरता है।

(3) निज आत्मा का कैलाशचन्द्र आदि परद्रव्यों से सर्वथा सम्बन्ध नहीं है; ज्ञानादि गुणों से सम्बन्ध है।

(4) स्वयं सिद्ध भगवान है, वह शरीर की आड़ में दिखायी नहीं देता है।

(5) यह भी अचम्भा है — ज्ञान-दर्शनादि का धारी भगवान, शरीरादि में मृतक कलेवर में अन्धा है।

(6) तू जीवतत्त्व है; अजीवतत्त्व नहीं है — ऐसा माने-जाने तो बेड़ा पार हो जावे।

- जय गुरुदेव!

आस्रव-अशुचि, अपवित्र, जड़स्वभावी, दुःख का कारण, लाख के समान घातक, अनित्य, अध्रुव, अशरण, वर्तमान में दुःखरूप और आगामी दुःखस्वरूप है और भगवान आत्मा तो सदा ही अति निर्मल, चैतन्यस्वभावी, विज्ञानघनस्वभावी, निराकुलस्वभावी, नित्य, ध्रुव, शरण वर्तमान में सुखस्वरूप और आगामी में सुखस्वरूप है।

- आचार्य कुन्दकुन्द

दिनाँक 16-1-95

(1) आज सारा विश्व, सम्यग्दृष्टि को छोड़कर, अजीवतत्त्व में ही पागल बना फिर रहा है।

(2) स्वयं ज्ञान-दर्शनादि स्वभावों से अभिन्न है, और अजीवतत्त्व से सर्वथा सम्बन्ध नहीं है — ऐसा पता न होने के कारण भटक रहा है।

(3) काम-भोग-बन्ध कथा ही सुनी है, परिचय में आयी है; उसी की सब चर्चा करते है किन्तु आत्मा से सर्वथा इनका सम्बन्ध नहीं है। यह बात सुनी नहीं, परिचय में आयी नहीं, इसकी चर्चा कहीं सुनने को भी मिलती नहीं है; अत: आत्मा की समझ दुर्लभ है।

(4) यही बात समयसार, गाथा 11 के भावार्थ में कही है, तथा 12वीं गाथा के भावार्थ में अज्ञानी क्या करे? ज्ञानी क्या करता है? —आदि बातों का स्पष्टीकरण किया है। **- जय गुरुदेव**!

दिनाँक 17-1-95

(1) जैसे, कोई बम्बई में रहता है, वह वहाँ पर पाँच हजार रुपया कमाता है - यदि उसे कहा जावे कि तुम बिजौलियाँ गाँव में आ जाओ - तुम्हें 20 हजार रुपया बचेगा - वह तुरन्त चल देगा; उसी प्रकार किसी को धर्म के लिये कहा जावे कि तुम बिजौलियाँ आवो —तो वह नहीं आवेगा, क्योंकि धर्म का विश्वास नहीं है।

(2) जिसकी रुचि होती है, उसमें बहाना नहीं मिलाता है; जिसकी रुचि नहीं होती, उसमें बहाना मिलाता है।

(3) धर्म, अरूपी है; आत्मा, अरूपी है; आत्मा के गुण, अरूपी हैं — एक बार निर्णय कर। तू साक्षात् अजीवतत्त्व से सर्वथा भिन्न, ज्ञान-दर्शनादि से अभिन्न, ज्ञायक भगवान आत्मा है; फिर देख क्या होता है, किसी से पूछना नहीं पड़ेगा। **- जय गुरुदेव!**

भाई, प्रभु! तू कैसा है, तेरी प्रभुता की महिमा कैसी है, इसे तूने नहीं जाना है। तू अपनी प्रभुता के भान बिना, बाहर में जिस-तिस के गीत गाया करता है, तो उसमें तुझे अपनी प्रभुता का लाभ नहीं है। तूने पर के गीत तो गाये परन्तु अपने गीत नहीं गाये। भगवान की प्रतिमा के सामने कहता है कि 'हे नाथ, हे भगवान! आप अनन्त ज्ञान के स्वामी हो।' वहाँ सामने से वैसी ही प्रतिध्वनि आती है कि 'हे नाथ, हे भगवान! आप अनन्त ज्ञान के स्वामी हो...' तात्पर्य यह है कि जैसा परमात्मा का स्वरूप है, वैसा ही तेरा स्वरूप है, उसे तू पहचान!

मङ्गल समर्पण

अनादि होने से आस्रव नित्य नहीं हो जाता, क्योंकि कूटस्थ अनादि को छोड़कर, प्रवाह अनादि में नित्यत्व नहीं पाया जाता। यदि प्रवाहरूप से अनादि होय तो उसको (मिथ्यात्व) नित्यपना प्राप्त होता है।

-आचार्य वीरसेनस्वामी

दिनाँक 18-1-95

(1) जन्म-मरण इकला करे, सुख-दु:ख भोगे एक।
नरक गमन भी एकला, मोक्ष जाय जीव एक ॥

(2) निज अरूपी आत्मा का विश्व के किसी भी पदार्थ के साथ सर्वथा सम्बन्ध नहीं है, यह बात यथार्थ है।

(3) यह जीव, व्यर्थ में परद्रव्यों में 'यह मेरा' है, इस प्रकार इस मान्यता में पागल बना फिरता है। जब यह जाने कि :—

(4) मैं ज्ञान-दर्शनादि स्वभावों से अभिन्न, स्वयं सिद्ध सत् हूँ; मुझ सत् से अजीवतत्व का सर्वथा सम्बन्ध नहीं है, तभी सुखी हो जावेगा।

(5) जीव जुदा, पुद्गल जुदा — इतना बस ही है।

(6) निज आत्मा, चैतन्य; शरीर-मूर्त है - इससे सम्बन्ध नही है — इतना ही सार है। **- जय गुरुदेव!**

दिनाँक 24-1-95

जैनदर्शन का सार, समयसार, गाथा 100 के चार बोल

(1) उठना-बैठना -खाना-पीना-पाँचों इन्द्रियों के भोग-रुपया, पैसा, इकट्ठा करना, व्यापार करना आदि कार्य का व्याप्य-व्यापक, सर्वथा पुद्गल ही है।

(2) त्रिकाली आत्मा का इसमें किसी भी प्रकार का सर्वथा सम्बन्ध नहीं है।

(3) अज्ञानी के योग-उपयोग का कर्ता होने से, उठना-बैठना-खाना-पीना-पाँच इन्द्रियों के भोग, रुपया-पैसा-इकट्ठा करना, व्यापार करना आदि मैं करता हूँ — ऐसा भ्रम उत्पन्न हो गया है। जिसका फल, वर्तमान में भी निगोद है तथा मनुष्यभव छोड़कर, निगोद में चला जावेगा। — तब विचार का भी अवसर नहीं रहेगा।

(4) ज्ञानी आत्मा का योग-उपयोग, परद्रव्य की पर्याय का निमित्त नैमित्तिकपना भी नहीं है; मात्र जाननेवाला है। - इस रहस्य का मर्म, सम्यग्दर्शन हुए बिना ध्यान में नहीं आ सकता है; अत: सम्यग्दर्शन को प्राप्त करने के लिये तू अजीवतत्त्व नहीं है; मात्र जीवतत्त्व है - इतना ही करना है। **- जय गुरुदेव!**

दिनाँक 17-2-95

(1) जैसे, कुत्ते आपस में लड़ते हैं; इसी प्रकार जीव, शरीर / जड़ के साथ कुश्ती लड़ रहा है।

(2) जैसे, सास-बहू की लड़ाई होती है; उसी प्रकार आजकल के मुमुक्षु कहलानेवाले पण्डितों का हाल है।

(3) व्यर्थ में, कुछ लेना-देना नहीं है। वाह रे! पञ्चम काल! किसी जीव को यथार्थ भासित होता ही नहीं। **हमारे समय में सत्य वक्ता परमपूज्य कानजीस्वामी ही यथार्थता को बताकर चले गये।**

जीव, स्वर्ग में एकला, नरक में एकला, तिर्यंच में एकला, मनुष्य में भी एकला और मोक्ष भी एकला ही है, पर कारण बिल्कुल नहीं।

क्या नौकर, मालिक की सेवा करता है? कर्मचारी, सरकार की सेवा करता है? मन्त्री, राजा की सेवा करता है?

बिल्कुल नहीं। **- जय गुरुदेव!**

दिनाँक 18-2-95

प्रश्न- क्या कोई लौकिक में दूसरे की सेवा करता है?

लड़का है, —क्या वह माँ-बाप की सेवा करता है?

लड़का है, विवाह हो गया —क्या वह स्त्री की सेवा करता है?

लड़का है, भोग भोगता है —क्या स्त्री को भोगता है?

लड़का है, मिठाई खाता है —क्या उसे मिठाई की महिमा है?

लड़का है, फूल सूँघता है —क्या फूल की महिमा है?

लड़का है, सिनेमा देखता है —क्या उसे सिनेमा की कीमत है?

लड़का है, गाना सुनता है —क्या उसे गानेवाली की महिमा है?

लड़का है, रुपया कमाता —क्या उसे रुपयों की महिमा है?

लड़का है, राजा की सेवा करता है —क्या राजा की महिमा है?

लड़का है, सुन्दर महलादि में रहता है —क्या सुन्दर महल की कीमत है?

अरे! दुनिया को क्या पड़ी है? मैंने यह किया, मैंने कमाया और बड़ा उद्योगपति बन गया; पिता के पास कुछ नहीं था किन्तु मैंने अपने हाथों के बल से प्राप्त किया - इस प्रकार दुनिया पागलपन में जीवन व्यतीत कर देती है। प्रभु! तूने बाहर का कुछ किया नहीं है, कर भी नहीं सकता; तूने मात्र राग और मिथ्यात्वभाव किया है। अब, तू अपनी दिशा पलट दे! अन्तर में तू नित्य-स्थायी तत्त्व है; उसके तल पर दृष्टि लगा और उसके गहरे संस्कार डाल! वहाँ बैठने से आत्मा को स्थायी विश्राम मिलेगा। राग और पर्याय में बैठने से / रहने से तुझे दुःख होगा।

उत्तर- बिल्कुल नहीं; मात्र कहने में आता है।

प्रश्न- क्या शिष्य — गुरु की सेवा करता है ?

क्या शिष्य — देव की पूजा करता है ?

क्या शिष्य — शास्त्र की आरती उतारता है ?

उत्तर- बिल्कुल नहीं; मात्र कहने में आता है।

प्रश्न- जैसा ऊपर लड़का पर लगाया — उसी प्रकार लड़की पर लगाओ-

लकड़ी - माँ-बाप-पत्नी-बच्चों की सेवा करती है ?

उत्तर- बिल्कुल नहीं; मात्र कहने में आता है।

दिनाँक - 18-2-95

प्रश्न- क्या सम्यग्दृष्टि को देव-गुरु-शास्त्र की कीमत है ?

क्या श्रावक को 12 अणुव्रतादि की कीमत है ?

क्या मुनि को 28मूलगुणादि की कीमत है ?

क्या विश्व के ज्ञानियों को पंच परमेष्ठी की कीमत है ?

क्या केवली को लोकालोक का मूल्य है ?

क्या किसी को दूसरे की महिमा है ?

उत्तर- बिल्कुल नहीं; मात्र कहने के लिये है। वास्तव में एक द्रव्य का, दूसरे द्रव्य से सर्वथा सम्बन्ध नहीं है; व्यर्थ में भ्रम में फँसा फिरता है।

प्रश्न- भ्रम क्या है ?

उत्तर- स्वयं जीवतत्त्व है, अपने को अजीवतत्त्व माना — यह भ्रम है।

प्रश्न- अपने को अजीवतत्त्व मानने से क्या होता है ?

उत्तर- सारा उल्टा ही दिखता है ?

विश्व के ज्ञानियों को अपनी ही महिमा, अपनी ही रुचि होती है, अन्त में सिद्धालय में जाकर ऐसे लीन हो गये कि सादि-अनन्त निकलेंगे ही नहीं।

- जय गुरुदेव!

मङ्गल समर्पण

सम्यग्दृष्टि को आप्त, आगम तथा पदार्थों की श्रद्धा होती है; मिथ्यादृष्टि को उसकी श्रद्धा नहीं होती। भले दया धर्म को जाननेवाला (बातें करनेवाला) ज्ञानी कहलाता हो, उसका ज्ञान, श्रद्धा का कार्य करता नहीं; इसलिए मिथ्या है।

- आचार्य वीरसेनस्वामी

कीमत है अपनी, कहता है पर की, जरा विचारों

प्रश्न– क्या दुकानदार को ग्राहक की कीमत है ?

क्या सुनार को सोने के खरीददार की कीमत है ?

क्या कपड़े के व्यापारी को कपड़े या ग्राहक की कीमत है ?

क्या वकील को कैसादि लानेवालों की कीमत है ?

क्या स्त्री को पति की कीमत है ?

क्या गुरु को शिष्य की कीमत है ?

क्या भावलिङ्गी मुनि को बाह्य 22 परीषह की कीमत है ?

क्या किसी को सुन्दर महलादि की कीमत है ?

क्या किसी को टेलीविजन की कीमत है ?

क्या किसी को कार की कीमत है ?

क्या स्त्री को जेवरादि कीमत है ?

क्या पुत्र को माँ–बाप की कीमत है ?

उत्तर– बिल्कुल नहीं; दूसरे की कीमत कहने में आती है।

जो दूसरे की महिमा से ही पागल है, जिसे अपना पता नहीं है, वह पागल ही है।

– जय गुरुदेव!

दिनाँक 22–2–95

(1) अनादि से अज्ञानी, शरीरादि को ही अपना मानता चला आ रहा है और 24 घंटे दु:खी हो रहा है।

(2) जिस समय यह जीव, यह समझ लेगा कि तू स्वयं जीवतत्त्व साक्षात् भगवान है और शरीरादि सर्वथा भिन्न है, उसी समय जन्म–मरण का अभाव हो गया और क्रम से मोक्ष चला जावेगा।

(3) बस इतनी सी बात है ? हाँ भाई ! तू ज्ञायक है; विश्व, ज्ञेय है — इतनी सी बात है।

एक समय की पर्याय भी तेरा ध्रुवधाम नहीं है। अहा! अन्तर में जहाँ तेरा ध्रुवधाम–भगवान आत्मा है, वहाँ जा! उसके संस्कार डाल तो तुझे सत् प्रगट होगा ही।

(4) शरीरादि, आत्मा के लिये कुछ कार्यकारी है।

(5) इन्हें (शरीरादि को) अपना माने तो चारों गतियों मे घूमकर निगोद इसका फल है।

(6) शरीरादि को अपना ना माने तो मोक्षमार्गी बन जावेगा और क्रम से मोक्ष चला जावेगा।

– जय गुरुदेव!

प्रश्न– क्या माने तो मोक्षमार्ग हो ?

उत्तर– (1) केवली के केवलज्ञान को माने।

(2) वस्तुस्वरूप को माने।

(3) कार्तिकेय अनुपेक्षा की गाथा 323 को माने।

(4) मोक्षमार्गप्रकाशक, पृष्ठ 52 को माने।

(5) समयसार की गाथा तीन को माने।

(6) चारों अनुयोगों में स्व-पर का भेदज्ञान ही धर्म की प्राप्ति का उपाय है- जब यह मानेगा — तू जीवतत्त्व है, बाकी सब पर है, तभी मोक्ष के रास्ते पर आ गया।

(7) व्याप्य-व्यापक, एक द्रव्य में ही होता है — ऐसा माने तभी चारों गतियों का अभाव होकर मोक्ष में प्रवेश हो गया।

(8) छहढ़ाला — तातें जिनवर कथित — को माने

(9) इष्टोपदेश, 50 वाँ श्लोक – तू जीवतत्त्व है, बाकी सब पर का खेल है – ऐसा माने।

(10) आत्मा, चैतन्य; शरीर, जड़ है —इससे सम्बन्ध नहीं।

(11) जीव और पुद्गल अलग-अलग है — यही संक्षेप में तत्त्व का सार है।

– जय गुरुदेव!

चतुर्थ गुणस्थान प्राप्त करने से जीव को सम्यक्त्व प्राप्त होता है, वहाँ उस गुणस्थानी जीव को 41 प्रकृतियों का बन्ध नहीं होता तथा और प्रकृतियों की स्थिति और अनुभाग अल्प बाँधता है, तो भी वह संसार-स्थिति का छेदक होता है; इसलिए मिथ्यादृष्टि की अपेक्षा उसे अबन्धक कहने में आया है।

– आचार्य नैमिचन्द्र सिद्धान्त चक्रवर्ती

रात्रि 1 बजे **दिनाँक 23-2-95**

प्रश्न– जैनधर्म क्या है ?

उत्तर– आत्मा का साक्षात्कार ही जैनधर्म है।

प्रश्न– आत्मा का साक्षात्कार कैसे हो ?

उत्तर– आत्मा का साक्षात्कार कैसे हो ? जहाँ से यह प्रश्न उठा, वह ही तू है।

प्रश्न– चिराग तले अँधेरा ?

उत्तर– स्वयं है भगवान; मानता है अपने शरीरादि, वह चिराग तले अँधेरा जैसी बात है।

प्रश्न– आत्मा का साक्षात्कार होते ही क्या होता है ?

उत्तर– जैसा केवली भगवान जानते हैं, वैसा ही छद्मस्थ साधक जानता है; मात्र प्रत्यक्ष-परोक्ष का ही अन्तर है।

प्रश्न– आत्मा के साक्षात्कार के लिये, प्रवचनसार, जो दिव्यध्वनि का सार है – उसमें किस गाथा में साक्षात्कार का उपाय बताया है ?

उत्तर– अरे भाई! पूरे जैनशासन में आत्म-साक्षात्कार के अलावा कुछ नहीं है। गाथा 90 में साक्षात्कार का उपाय है। **– जय गुरुदेव!**

रात्रि 2 बजे **दिनाँक 23-2-95**

(1) गुरु की आज्ञानुसार न चलने के कारण जीव, अज्ञानी है। कहा है—

(अ) गुरु की आज्ञानुसार आज्ञा का पालन एक समय भी नहीं किया।

(आ) अपनी प्रवृति के अनुसार, गुरु की आज्ञा का पालन अनन्त बार किया; अत: आत्मा साक्षात्कार नहीं हुआ।

प्रश्न– गुरु की आज्ञा क्या है ?

उत्तर– तू जीवतत्त्व है, तेरा अजीवतत्त्व से सर्वथा सम्बन्ध नहीं है — ऐसा यथार्थरूप से मानते ही आत्म-साक्षात्कार हो जाता है ?

प्रश्न– आत्म-साक्षात्कार को बतानेवाला साक्षात् आपने देखा है ?

उत्तर– चारों अनुयोगों में आत्म-साक्षात्कार के अलावा कुछ नहीं है। उसको साक्षात् बतानेवाले मुझे श्री परम पूज्य कानजीस्वामी ही मिले; बाकी होंगे, मुझे केवलज्ञान तो है नहीं। – जय गुरुदेव!

अहा! मोक्ष तो परमानन्द से तृप्तदशा है। परम आनन्दमय तत्त्व में जो परिणति ढल गयी है, वह स्वयं आनन्दमय हो गयी है और भवदु:ख से छूट गयी है। इसलिए हे मोक्षसुख के अभिलाषी भव्यजन! तू भी अपनी परिणति को आत्मा में जोड़कर ऐसी योगभक्ति कर! यह योगभक्ति तुझे परम वीतराग सुख प्रदान करनेवाली है।

रात्रि 3 बजे **दिनाँक 23-3-95**

(1) एक बार आत्म-साक्षात्कार होने पर, वह हमेशा साक्षात्कार ही रहता है - एक समय भी उसका विरह नहीं होता है। उसका फल, साक्षात् मोक्ष ही है।

(2) सिद्ध भगवान के साक्षात्कार और चौथे-पाँचवें-छठें-सातवें-गुणस्थानों के साक्षात्कार में क्या अन्तर है ?

(3) मात्र मग्नता का अन्तर है; साक्षात्कार में अन्तर नहीं है।

प्रश्न- चारों अनुयोगों में आत्म-साक्षात्कार की ही बात है - जरा कुछ बताइये न ?

उत्तर- प्रवचनरत्नाकार में इसके अलावा कुछ नहीं। आचार्यकल्प पण्डित टोडरमलजी ने मोक्षमार्गप्रकाशक में पृष्ठ-पृष्ठ पर आत्म-साक्षात्कार की ही बात की है। **- जय गुरुदेव!**

समय - 3.30 बजे **दिनाँक - 23-2-95**

श्री समयसार, गाथा - 17-18

प्रश्न- क्या नरक में भी आत्म-साक्षात्कारवाले जीव हैं ?

उत्तर- जिसको अपना अनुभव हुआ हो, वह कहीं भी पड़ा हो, आत्म-साक्षात्कार ही रहता है।

(1) राजा श्रेणिक का जीव, पहले नरक में है, आत्म-साक्षात्काररूप ही प्रवर्तता है।

(2) आत्म-साक्षात्कार होने पर ही सम्यग्दर्शन होता है।

(3) 'बाहर नारकी कृत दु:ख भोगे, अन्तर सुखरस गटागटी' — यह आत्मसाक्षात्कार की बात है।

(4) जिसको आत्म-साक्षात्कार होता है, उसे अजीवतत्त्व में अपनेपने का स्वप्न भी नहीं होता है, यह बात रत्नकरण्डश्रावकाचार, श्लोक 41 में आयी है।

(5) वर्तमान में साक्षात् पूज्य गुरुदेव कानजीस्वामी, आत्म-साक्षात्कार के निमित्त थे। - पूज्य गुरुदेव

मङ्गल समर्पण

सिद्धान्त में गुणस्थानों की परिपाटी में चारित्रमोह के उदय के निमित्त से सम्यग्दृष्टि के जो बन्ध होता है, वह भी निर्जरारूप ही समझना चाहिए क्योंकि सम्यग्दृष्टि के, जैसे पूर्व में मिथ्यात्व के समय से बँधा हुआ कर्म खिर जाता है, उसी प्रकार नवीन बँधा हुआ भी खिर जाता है। उसके उस कर्म के स्वामित्व का अभाव होने से, वह आगामी बन्धरूप नहीं, किन्तु निर्जरारूप ही है।

- पण्डित जयचन्द छाबड़ा

प्रात: 3:45 बजे **दिनाँक 23-2-95**

प्रश्न- जैसा आत्मा असंख्य प्रदेशी है- ऐसा साक्षात् आत्म-साक्षात्कार है ?

उत्तर- नहीं भाई ! ज्ञानियों को अनुभव में आत्म-साक्षात्कार है, केवलियों को प्रदेशों का भी साक्षात्कार है। अनुभव की अपेक्षा अन्तर नहीं है; प्रदेशों की अपेक्षा अन्तर है; अत: प्रत्यक्ष-परोक्ष का अन्तर है।

प्रश्न- चौथे-पाँचवें-छठवें-सातवें गुणस्थान और श्रेणी के आत्म-साक्षात्कार में क्या अन्तर है ?

उत्तर- मात्र मग्नता का ही अन्तर है।

(1) शरीर और शुभाशुभभावों में एकत्वबुद्धि, आत्म-साक्षात्कारवाले के कभी नहीं होती है। यदि होती है, तो वह आत्म-साक्षात्कार नहीं है।

- जय गुरुदेव!

समय 5:00 बजे **दिनाँक 23-2-95**

(1) चौथे गुणस्थान से लेकर सिद्धदशा तक आत्म-साक्षात्कार ही है; मात्र प्रत्यक्ष-परोक्ष का अन्तर है।

(2) सम्यग्दर्शन होते ही आत्म-साक्षात्कार हो जाता है। (स हि मुक्त एव) 198कलश

(3) शरीरादि में (अजीवतत्त्व में) एकत्वबुद्धि होने से ही मिथ्यादृष्टि को आत्म-साक्षात्कार नहीं होता है। जब एकत्वबुद्धि हटे, तभी आत्म-साक्षात्कार हो जाता है। **- जय गुरुदेव!**

रात्रि 2:30 बजे **दिनाँक 24-2-95**

(1) मनुष्य जन्म, दिगम्बर धर्म, पूज्य गुरुदेव का समागम मिला - फिर भी न समझा तो मनुष्य जन्मादि व्यर्थ चले गए।

(2) शरीर की अपेक्षा ज्यादा से ज्यादा सौ वर्ष का का लेखा है।

(1) जो जीव, व्यापारादि में लग गया है।

(2) विवाह के चक्कर में पड़ गया है, वह खाली चला जावेगा।

अहो ! सुन्दर आनन्द झरता मेरा यह तत्त्व, परम उत्तम है; इसकी भावना से अपूर्व सुख उत्पन्न होता है। अहा ! ऐसा सहज सुखरूप मेरा तत्त्व, उसकी भावना में तत्पर मुझे अब जगत के दूसरे किसी पदार्थ की स्पृहा नहीं है।

(3) बालपने में ज्ञान न लह्यो, तरुण समय तरुणी रत रह्यो।
अर्धमृतक सम बूढ़ापनो, कैसे रूप लखे आपनो॥
फिर समय कहाँ रहा?

(4) आज विश्व में, मेरे विचार में, पूज्य गुरुदेव ही चारों अनुयोगों का मर्म समझाकर चले गये। बाकी तो सब उल्टी ही बात देखने को मिलती हैं।

(5) पञ्चम काल से कोई सम्यक्त्व प्राप्त करता है, यह भी अचम्भा है। परमात्मप्रकाश, दूसरा अधिकार गाथा 138 देखो।

— जय गुरुदेव!

दिनाँक 24-2-95

(1) आज कहीं सत्य कहनेवाला मिलता ही नहीं।

(2) संसार से पार होने के लिये निमित्तरूप कुन्दकुन्द भगवान का समयसार और साथ में अमृतचन्द्राचार्य की टीका में संजीवनी मन्त्रों की भरमार है।

प्रश्न– उसमें क्या है?

उत्तर– (1) व्याप्य-व्यापक, एक द्रव्य में ही होता है।

(2) निज भूतार्थ के आश्रय से ही सम्यग्दर्शनादि होते है; किसी परद्रव्य या विकारी भावों से धर्म का सम्बन्ध नहीं है।

(3) तू साक्षात् भगवान है।

आत्मा को हाथ पर रखकर विश्व को परोसा है; जिसका भाग्य हो, उसे ही यह बात सुनने को मिलती है। **पूज्य गुरुदेव के उपकार के लिये ज्ञानियों के पास शब्द नहीं।** प्रारम्भ की 18 गाथाओं में माल भर दिया है। बाद की गाथाओं में उनको पीसा है।

जय समयसार – जय समयसार – जय गुरुदेव

कर्ता-कर्मअधिकार, सर्वविशुद्धिअधिकार – बड़ा अचम्भा है।

सम्यग्दृष्टि को कर्म का उदय वर्तता होने पर भी, सम्यग्दृष्टि को पुन: कर्म का बन्ध किञ्चितमात्र भी नहीं होता, परन्तु जो कर्म पहिले बँधा था, उसके उदय को भोगने पर उसको नियम से उस कर्म की निर्जरा ही होती है।

– श्रीमद् अमृतचन्द्राचार्य

दिनाँक 24-2-95

हे परमपूज्य गुरुदेव! आप धन्य हैं —

(1) आज विश्व में किसी से बात करने की बात भी व्यर्थ है। सारा संसार, काम-भोग-बन्ध की ही बात करता है।

(2) चारों अनुयोगों में तो वीतरागता ही भरी पड़ी है।

(3) **आज गुरुदेव के भक्त कहलानेवालों ने तो कमाल ही कर दिया है। थोड़ा-सा मुमुक्षु मण्डल (समाज), उसमें अलग-अलग बँट गये - मात्र अहंबुद्धि के कारण।**

सब के पण्डित भी बँट गये, क्षेत्र भी बँट गया, एक दूसरे की टाँग खैच रहे हैं -

इससे ज्यादा और क्या अचम्भा -

A- पूज्य गुरुदेव सत्य बात के बतलाने मिले, यह भी अचम्भा है।

B- उसके सुननेवाले मिले, यह भी अचम्भा है।

C- सुननेवाले भी गलत रास्ते पर चल रहे हैं, यह भी अचम्भा है।

— जय गुरुदेव!

वस्तु विचारत ध्यावर्तें, मन पावे विश्राम;
रस स्वादत सुख उपजै, अनुभव याकौ नाम।

सोमवार दिनाँक 26-2-95

(1) आज सारा विश्व, अजीवतत्त्व की ही चर्चा करता है, उसी की सम्हाल आदि की बात करता है।

(2) **पञ्चम काल में पूज्य गुरुदेव के अलावा और कोई दिखता ही नहीं था, वे भी चले गये।**

(3) बड़े से बड़ा पढ़ा-लिखा पण्डित, त्यागी कहलाने पर भी अजीवतत्त्व की चर्चा के अलावा कुछ नहीं।

शास्त्र पढ़ लिया, माला फेर ली, प्रवचन कर दिया, महीनों-

✯ प्रभु! तू महान तत्त्व है; राग जितना छोटा तू नहीं है।

✯ तुझमें से तो अलौकिक आनन्द की तरंगें उठें, ऐसा तू है।

✯ तुझमें से राग की या दुःख की तरंगें उठें, ऐसा तू नहीं है।

✯ अन्तर्मुख होने से स्वतत्त्व, ज्ञान-आनन्द की तरंगरूप परिणमित होता है।

✯ ऐसे आनन्दमय तत्त्व का माप विकल्पों से नहीं हो सकता; उसका माप तो चैतन्य द्वारा ही होता है — ऐसा महान आत्मतत्त्व तू है।

महीनों का उपवास हो गया, दूसरे को सम्बोधन का ही जिसका अभिप्राय: है — वे तो सब अनन्त संसारी हैं।

बड़े महान पुण्योदय से पूज्यश्री कानजीस्वामी का समागम मिला, फिर न समझा तो — भगवान जाने क्या होगा! हे जीव! तू सावधान हो! सावधान हो!

– जय गुरुदेव!

मंगलवार **दिनाँक – 28–2–95**

(1) विश्व के जीव, ज्ञान–दर्शनादि स्वभावों से अभिन्न, स्वयं सिद्ध वस्तु हैं। इन सब जीवों का शरीरादि अजीवतत्त्व से सर्वथा सम्बन्ध नहीं है।

(2) जो निगोद से लगाकर, असंज्ञी तक तो इस बात को जानते ही नहीं – वे व्यर्थ में 24 घंटे शरीरादि अजीवतत्त्वों में अपनापना मान–मानकर दु:खी ही रहते हैं।

(3) जिन्होंने निगोद से निकलकर संज्ञीपना पाया और शरीरादि से सर्वथा सम्बन्ध नहीं है — ऐसा जाना–माना नहीं, वे भी 24 घण्टे अजीवतत्त्व में अपनापना मानकर, दु:खी होकर भ्रमण करते रहते हैं।

(4) जिन्होंने शरीरादि को सर्वथा भिन्न जाना और अपने को ज्ञान–दर्शनादि स्वभावों से अभिन्न स्वयं सिद्ध अपने को अनुभव–ज्ञानादि किया, वे जीव, मोक्षमार्ग को पा गये, उन्हें समयसार कलश 198 में 'स हि मुक्त एव' कहा है।

दिनाँक – 28–2–95

प्रश्न– धर्म क्या इतना आसान है ?

उत्तर– (1) अरे भाई! आसान है, सहजरूप है। जिन जीवों ने निगोद से निकलकर, संज्ञीपना पाया, उन्होंने अपने को नहीं पहिचाना, वे त्रसपर्याय को पूर्ण कर निगोद में चले जावेंगे — कभी विचार का अवकाश न रहेगा।

(2) संज्ञीपना मिला, तो धर्म प्राप्तकर मोक्ष में जाने को ही मिला, परन्तु जो संज्ञीपना पाने पर, दिगम्बर धर्मी

जीव के रागादि परिणामों के निमित्त से पुद्गल, कर्मरूप परिणमाता है परन्तु ज्ञान परिणत है, उसको जो अल्प स्थिति तथा अनुभागवाली कितनी कर्म प्रकृतियाँ बँधने पर भी, उसका स्वामी न होने से, वह कर्म को प्राप्त नहीं होता।

– आचार्य वीरसेनस्वामी

कहलाने पर, **वर्तमान में परम पूज्यश्री कानजीस्वामी का समागम मिलने पर भी नहीं समझा तो पुराना घर (निगोद) तैयार है।**

(3) हे जीव! सावधान! सावधान! ऐसा अवसर फिर न मिलेगा। ज्ञानी जो बताते हैं, उस पर चलकर मोक्षमार्ग पर आ जा। **– जय गुरुदेव!**

दिनाँक – 12-4-95

(1) आज सारा विश्व, पर में अपनेपने की मान्यता से ही दु:खी है और व्यर्थ में पर को परिणमाने में लगा है, जबकि पर का इसके साथ सर्वथा सम्बन्ध नहीं है।

(2) स्वयं जीव है, पर से सम्बन्ध नहीं है —इतना मानते ही संसार का अभाव हो जाता है।

(3) संसार एक समय का है और संसार अपनी मूर्खता से ही है। मूर्खता क्या है ? पर को अपना मानना

– जय गुरुदेव!

दिनाँक – 14-4-95

(1) .... कहीं भी नहीं जाना, सब जगह मेरी-तेरी में ही पागल है।

(2) **पूज्य गुरुदेव चले गये, उनके साथ उनकी, अर्थात् अनादि से तीर्थङ्करों की बात भी चली गयी।**

(3) अब तो अन्धकार-अन्धकार ही है। एकमात्र तू जीवतत्त्व है, तेरा अजीवतत्त्व से सर्वथा सम्बन्ध नहीं है। जिनसे सम्बन्ध नहीं है, उन्हें अपना मानकर पागल हुआ फिरता है।

(4) अपने को जीवतत्त्व मानें, तभी धर्म प्रारम्भ हो जाता है। भाई! धर्म आसान है, सहजरूप है। तू सावधान! सावधान हो!

– जय गुरुदेव!

अरे जीव! तू भवचक्र में दु:ख से भटक रहा है; एक बार अपने आनन्दमूर्ति आत्मा को लक्ष्य में लेकर उसका अनुभव कर, तो तेरे समस्त भव मिट जायेंगे और मोक्ष का मार्ग तुझमें ही प्रसिद्ध होगा। अरे! मनुष्यपना प्राप्त करके भी यदि मोक्ष का उपाय नहीं किया तो तूने क्या किया? इस मनुष्य अवतार में करने योग्य कार्य तो यह एक ही है; दूसरे शुभ-अशुभ हों, वे कहीं चैतन्य की चीज नहीं हैं।

मङ्गल समर्पण

दिनाँक - 20-4-95

क्या जाने-माने तो सम्पूर्ण दु:ख का अभाव हो जावे ?

(1) प्रत्येक द्रव्य का नित्य-अनित्य स्वभाव है।

(2) प्रत्येक द्रव्य का सामान्य-विशेष स्वभाव है।

(3) प्रत्येक द्रव्य का तत्-अतत् स्वभाव है।

(4) प्रत्येक-द्रव्य का एक-अनेक स्वभाव है।

(5) प्रत्येक द्रव्य अपने गुण-पर्यायों को ही स्पर्श करता है।

(6) अनादि-निधन वस्तुएँ भिन्न-भिन्न अपनी-अपनी मर्यादा लिये परिणमें हैं, कोई किसी का परिणमाया परिणमता नहीं — इतना मानते ही बेड़ा पार है।

(7) पारमेश्वरी व्यवस्था, प्रवचनसार, 93 वीं गाथा

(8) सत् द्रव्य लक्षणम्; उत्पादव्ययध्रौव्ययुक्तं सत्। **- जय गुरुदेव!**

जय-कुन्दकुन्दस्वामी! जय जय अमृतचन्द्राचार्य!! जय जय टोडरमलजी!!!

जय-जय-जय-जय परम पूज्य कानजीस्वामी!!

दिनाँक 24-7-95

(1) विश्व के अज्ञानी, व्यर्थ में दु:खी होकर संसार भ्रमण करते-रहते हैं।

जिस समय अज्ञानी को 100 वीं गाथा मर्म दृष्टि में आ जावेगा, वह मोक्ष का पथिक बन जावेगा।

समयसार का कर्ता-कर्म अधिकार, उसमें भी 100 वीं गाथा के चार बोल, आचार्यों ने विश्व प्राणियों के लिये अमृत का दान परोसा है।

परमपूज्य गुरुदेवश्री पर 100वीं गाथा के चार बोल

(1) पूज्य गुरुदेव, समस्त शिष्य, मानस्तम्भ आदि सब का व्याप्य-व्यापक, पुद्गल के साथ है।

(2) आत्मा का, पूज्य गुरुदेव आदि से सर्वथा सम्बन्ध नहीं है।

(3) पूज्य गुरुदेव के योग उपयोग का परद्रव्य का निमित्त नैमित्तिक सम्बन्ध नहीं; मात्र ज्ञाता-ज्ञेय सम्बन्ध।

मेरुसमान निष्कम्प, आठ मलरहित, तीन मूढ़ताओं से रहित और अनुपम सम्यग्दर्शन, परमागम के अभ्यास से होता है।

- आचार्य वीरसेनस्वामी

(1) पूज्यश्री, अजीवतत्त्व को सर्वथा भिन्न है — ऐसा जानते-मानते हैं।

(2) मात्र त्रिकाली पर दृष्टि रहती है।

(3) अस्थिरता सम्बन्धी राग, हेय तथा अजीवतत्त्व, ज्ञेय

(4) सारा विश्व केवली समान - मात्र प्रत्यक्ष-परोक्ष का अन्तर है।

- जय गुरुदेव!

अलीगढ़

रात्रि 1.30 बजे **दिनाँक 6-8-95**

समयसार गाथा - चार पर

आज सारा विश्व चाहे, वह गरीब हो या अमीर हो; पापी हो या धर्मात्मा हो; काम-भोग-बन्ध की कथा में ऐसा लवलीन है कि धर्म की बात सुनना ही पसन्द नहीं करता है; सारा जीवन ऐसे का ऐसे पूरा करके 84 लाख योनियों में भ्रमण करता रहता है।

आज विश्व में मुझे तो पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी ही महान आत्मा मिले, मिलने पर वह अपना कल्याण ना करे तो जीवन को धिक्कार है।

आज सारे,विश्व को अजीवतत्त्व में एकत्वबुद्धि हो गयी है। एकमात्र दिगम्बर धर्म में ही धर्म की बात देखने को मिलती है। **यदि दिगम्बरधर्म तथा पूज्यश्री कानजीस्वामी का समागम मिलने पर भी ना समझा तो, धिक्कार हजारों बार।** **- जय गुरुदेव!**

ज्ञान को अन्तर्मुख करके सीधे ज्ञानानन्दस्वरूप के साथ सम्बन्ध कर, उसमें तुझे आत्मलब्धिरूप मुक्ति होगी। मोक्ष का महा-आनन्द तुझे तेरे आत्मा में ही अनुभव में आयेगा; इसलिए उपयोग को आत्मा में जोड़कर अति-उत्तम / सर्वश्रेष्ठ योगभक्ति कर! समस्त तीर्थङ्कर भगवन्त ऐसी उत्तम योगभक्ति द्वारा ही निर्वाण को प्राप्त हुए हैं। मैं भी ऐसी योगभक्ति द्वारा मुक्ति के मार्ग में उन तीर्थङ्करों के पन्थ में जाता हूँ।

मङ्गल समर्पण

मङ्गल समर्पण

स्थान - अलीगढ़ **दिनाँक - 1-11-95**

मन्त्रों की पुकार

(1) निश्चय से आत्मा, परद्रव्यों से सर्वथा भिन्न, स्वभावों से अभिन्न, स्वयं-सिद्ध वस्तु है।

(2) निश्चय से आत्मा, ज्ञान-दर्शनादि गुणों से अभेद, स्वयं-सिद्ध वस्तु है।

(3) वीतरागभाव ही मोक्षमार्ग है ।

A- वीतरागता ही सम्यग्दर्शन, श्रावकपना, मुनिपना, श्रेणीपना, अरहन्त और सिद्धपना है।

B- वीतरागभाव ही प्रतिक्रमण-आलोचना-प्रत्याख्यान है।

C- वीतरागभाव ही जैनधर्म है।

- जय गुरुदेव!

जो पुरुष, सम्यग्दर्शन से शुद्ध है, वही शुद्ध है। जिसका दर्शन, शुद्ध होता है, वही निर्वाण को प्राप्त करता है; दूसरा नहीं। निर्वाण प्राप्ति में वह (सम्यग्दर्शन) प्रधान है।

- आचार्य कुन्दकुन्द

स्थान - अलीगढ़ **दिनाँक - 7-11-95**

(1) पर से (अजीवतत्त्व से) सर्वथा सम्बन्ध नहीं है; व्यर्थ में अजीवतत्त्व में मेरे-तेरे की कल्पना में ही यह जीव, अनादि से पागल है।

प्रश्न- यह पागलपन कैसे मिटे ?

उत्तर- अरे भाई! तेरा शरीरादि अजीवतत्त्व से सर्वथा सम्बन्ध नहीं है — इतना मानते ही साक्षात् अपना परमेश्वर दृष्टि में आ जाता है।

प्रश्न- थोड़े में बताइये ?

उत्तर- भाई! तू साक्षात अकृत्रिम चैत्यालय है। तेरा अजीवतत्त्व से सर्वथा सम्बन्ध नहीं है।

प्रश्न- और थोड़े में ?

उत्तर- जीव -पुद्गल भिन्न हैं - यह तत्त्व संक्षेप —

- जय गुरुदेव!

दिनाँक - 11-11-95

(1) मोक्षमार्गप्रकाशक, पृष्ठ 52 तथा समयसार, तीसरी गाथा का मर्म दृष्टि में आते ही सम्यक्त्व की प्राप्ति हो जाती है।

(2) सत् द्रव्य लक्षणम्; उत्पादव्ययध्रौव्ययुक्तं सत् का मर्म दृष्टि में आते ही अतीन्द्रिय आनन्द शुरु हो जाता है।

(3) समयसार, 294 का मर्म दृष्टि मे आते ही अशरीरी भगवान का पता चल जाता है।

प्रश्न- जीव, दु:खी क्यों है ?

उत्तर- अजीवतत्त्व को अपना मानने से ही दु:खी है।

प्रश्न- सुखी कैसे हो ?

उत्तर- जब अजीवतत्त्व को यथार्थरूप से अपना नहीं मानेगा, तभी सुखी हो जावेगा।

प्रश्न- दु:ख क्या है ?

उत्तर- पर में एकत्वबुद्धि ही दु:ख है। **- जय गुरुदेव!**

दिनाँक - 27-12-95

प्रश्न- क्या पर के लक्ष्य से रागादिक होते हैं ?

उत्तर- कहने में आता है परन्तु रागादिक, पर्याय में अपनी उस समय पर्याय की योग्यता से ही होते हैं, तब वहाँ परद्रव्य उपस्थित होता है।

प्रश्न- क्या परद्रव्य रागद्वेष कराता है ?

उत्तर- सर्वथा नहीं ।

प्रश्न- क्या आत्मा के आश्रय से मोक्षमार्ग, मोक्ष होता है ?

उत्तर- कहने में आता है; वास्तव में मोक्षमार्ग, मोक्ष उस समय पर्याय की योग्यता से ही है।

प्रश्न- क्या प्रत्येक पर्याय निरपेक्ष है ?

उत्तर- हाँ भाई! प्रत्येक द्रव्य-गुण की पर्याय, निरपेक्ष, सत्, अहेतुक है; एक समय का सत् है। **- जय गुरुदेव!**

आत्मा सदा ही अपने चैतन्यरस से परिपूर्ण महान आनन्दमन्दिर है; उसमें अन्तर्मुख होनेरूप आवश्यक कार्य करनेवाला जीव, कोई वचनातीत सहजसुख का अनुभव करता है। यह एक ही कार्य, संसार के घोर दु:खों का नाशक और परम मुक्ति सुख का कारण है; इसलिए हे भव्यजीवों! हे सुख के वांछक जीवों! अन्तर में शुद्धोपयोग को जोड़कर निजात्मतत्त्व के अनुभवरूप ऐसा उत्तम कार्य करो। यह एक ही अवश्य करने योग्य कार्य है; दूसरे सभी राग के कार्य तो संसार दु:ख के दाता हैं।

मङ्गल समर्पण

मङ्गल समर्पण

यह श्रेष्ठतर सम्यग्दर्शन ही जन्म-जन्म का नाश करनेवाला है। उसकी जो श्रद्धा करता है, वह सम्यक्त्वी है। वह सम्यक्त्व मुनियों, श्रावकों तथा चतुर्गति के भव्य संज्ञी पञ्चेन्द्रिय जीवों को ही होता है।

– **श्री श्रुतसागर सूरि**

देहरादून, दिनाँक – **17-1-95**

प्रश्न– जैन कौन है?

उत्तर– जिसने अजीवतत्त्व से सर्वथा भिन्न अपने को अनुभव कर लिया हो, वह चौथे गुणस्थान से जैनपना शोभा पाता है। वह ही जैन हैं।

प्रश्न– वर्तमान के अनुभव कैसे हो?

उत्तर– जिस समय अजीवतत्त्व को अपना न मानेगा, तभी अनुभव हो जावेगा।

अरे भाई! सम्यग्दर्शनादि सुगम है। तू स्वाधीन है। – **जय गुरुदेव!**

दिनाँक – **3-2-96**

प्रश्न– जिसके आश्रय से पर्याय में शुद्धि प्रगटी, — वह आत्मस्वभाव कैसा है?

उत्तर– परभाव भिन्नम्।

प्रश्न– परभाव भिन्नम् आत्मस्वभाव के आश्रय से पर्याय में शुद्धनय कैसे प्रगटे?

उत्तर– (1) परद्रव्य हैं, परद्रव्य में गुण हैं, परद्रव्य में पर्याय हैं, परद्रव्यों के निमित्त से विकारीभाव भी हैं, परन्तु परभावभिन्नम् आत्मस्वभाव में इनका प्रवेश नहीं है। — ऐसा मानते-जानते ही शुद्धनय प्रगट हो जाता है।

– **जय गुरुदेव!**

दिन – **मंगलवार** **दिनाँक** – **20-2-96**

(1) विग्रहगति से आकर यहाँ मनुष्य में जन्म लिया, शरीर को अपना माना, माता-पिता को अपना माना, फिर-भाई-बहिनों की लड़ी लग गयी है। बड़ा हुआ, पढ़-लिख गया, नौकरी लग गयी, विवाह हो गया, बच्चे हो गये – सारा जीवन इन्हीं संकल्प-विकल्पों में पूरा करके, अनादि से परिभ्रमण कर रहा है। यदि यह समझ ले कि यह सब अजीवतत्त्व का खेल है; मेरे साथ सर्वथा सम्बन्ध नहीं है, तभी जीव सुखी हो जाता है – इसके अलावा दूसरा उपाय नहीं है।

जीव जुदा-पुद्गल जुदा, यही तत्त्व का सार। – **जय गुरुदेव!**

दिनाँक - 3-3-96

(1) आज सारा विश्व, पर में ही पागल हो रहा है।

(2) सारा विश्व, एकमात्र सम्यग्दृष्टि को छोड़कर, मिथ्या अध्यवसाय में ही पागल हो रहा है।

(3) सब जगह मिथ्या अध्वसाय की ही पुष्टि देखने में आ रही है।

(4) मिथ्या अध्यवसायी कहो - निगोदिया कहो, एक ही बात है।

(5) जैनधर्म मिलने पर भी जीव को विचार न आया तो किसको आयेगा ?

सावधान! सावधान!

(6) हे जीव! तू विश्व से अलग है। **- जय गुरुदेव!**

देहरादून

रात्रि 12.30 बजे से 2 बजे तक **दिनाँक 7-3-96**

प्रश्न- विश्व ने सुख किसे माना है।

उत्तर- लड़की की नाली को, लड़के की नाली से जोड़ देना - ही सुख माना है।इसे ही मिलाने-मिलाने में सारा जीवन नष्ट हो जाता है।

प्रश्न- अरे भाई! विचार तो करो - क्या यह ठीक है ?

उत्तर- गजब हो गया - सारे विश्व को सांप ने काट खाया है, इसी की चर्चा ही मुग्ध हो रहा है।

प्रश्न- सुख क्या है ?

उत्तर- आकुलतारहित, चिन्तारहित, क्लेशरहित, झंझटरहित वस्तुस्वरूप की सच्ची समझ ही सुख है।

(1) सारा विश्व, लड़की-लड़के को इसी सुख की चाह में लगाना चाहता है।

(2) इसी सुख के लिए बी.ए., एम.ए. करना, नौकरी करना, रोटी खाना, भोग करना, सुगन्धी का होना, बदवू का हटना, टेलीविजन, फिल्में देखना, मात्र इसी सुख के लिये हो रहा है।

जिसे आत्म-शान्ति का अनुभव करना हो, उसके लिये करनेयोग्य एकमात्र यही कार्य है कि अन्तर में सहज चैतन्यसुख से भरपूर निज परमात्मतत्त्वरूप स्वयं अपने को ध्याना। उसके ध्यान द्वारा तुरन्त ही अपने में विकल्पातीत अध्यात्मसुख प्रगट होता है।

अचम्भा हो गया – अचम्भा हो गया।

प्रश्न– क्या विश्व के जीवों की बुद्धि बिगड़ गयी है। भ्रष्ट हो गयी है ?

उत्तर– हाँ भाई ! — ऐसा ही है, भ्रष्ट ही हो गयी है – सावधान ! सावधान !

प्रश्न– क्या इन्द्रियसुख, सुख नहीं है ?

उत्तर– अरे भाई ! कुछ नहीं – व्यर्थ में पागल है। प्रवचनसार शास्त्र में इन्द्रियसुख की बात देखो – 53 गाथा से 68 तक; मोक्षमार्गप्रकाशक, पृष्ठ 47 पृष्ठ देखो।

क्या करना ?

तू स्थाप निज को मोक्ष पथ में, ध्या अनुभव तू उसे।
उसमें ही नित्य बिहार कर, न विहार कर परद्रव्य में॥

– जय गुरुदेव!

देहरादून

रात्रि में 2.00 बजे **दिनाँक 11-3-96**

(1) जिसका, जिस प्रकार केवली के ज्ञान में आया है, उसी प्रकार हुआ है, उसी प्रकार हो रहा है और उसी प्रकार होगा।

(अ) हे जीव ! जब ऐसी बात है, तब चिन्ता क्यों करता है ?

(आ) दूसरों के दोष क्यों देखता है ?

(इ) **हे पूज्य गुरुदेव! आप मेरे लिये तीर्थङ्करों से भी बड़े हो, आपने मेरा जन्म-मरण-मिटा दिया है।**

(ई) अब इधर-उधर नहीं जाना है। **– जय गुरुदेव!**

(1) अब जून 1996 तक देहरादून ही रहना है – ऐसी भावना है।

(2) एक बिजौलिया जुलाई में जाने का पक्का विचार है-परन्तु हालात जाने को गवाही देवेंगे तो-

(3) केवली के ज्ञान को मानो; वस्तुस्वरूप मानो; कर्ता-कर्म एक द्रव्य में होता है; विश्व व्यवहार से ज्ञेय तू ज्ञायक है — ऐसा मानो।

हे पूज्य गुरुदेव! आप धन्य हैं। **– जय गुरुदेव!**

जैसे तारों के समूह में चन्द्रमा अधिक है; पशुओं के समूह में सिंह अधिक है; उसी प्रकार मुनि और श्रावक दोनों प्रकार के धर्म में सम्यक्त्व, वह अधिक है।

– पण्डित जयचन्द छाबड़ा

दिनाँक 15-1-95

(1) जिसके साथ सम्बन्ध है, उसका पता ही नहीं।

(2) जिनके साथ सम्बन्ध नहीं है, व्यर्थ में उन्हीं में पागल बना फिरता है।

(3) निज आत्मा का कैलाशचन्द्र आदि परद्रव्यों से सर्वथा सम्बन्ध नहीं है; ज्ञानादि गुणों से सम्बन्ध है।

(4) स्वयं सिद्ध भगवान है, वह शरीर की आड़ में दिखायी नहीं देता है।

(5) यह भी अचम्भा है — ज्ञान-दर्शनादि का धारी भगवान, शरीरादि में मृतक कलेवर में अन्धा है।

(6) तू जीवतत्त्व है; अजीवतत्त्व नहीं है — ऐसा माने-जाने तो बेड़ा पार हो जावे।

-जय गुरुदेव!

प्रश्न- कितना करे तो बस?

उत्तर- स्व में बस; पर से खस; आयेगा आत्मा में अतीन्द्रिय रस; यही है अध्यात्म की कस — इतना करो तो बस।

प्रश्न- क्रोधादि क्यों उत्पन्न होते हैं?

उत्तर- पदार्थ अनिष्ट-इष्ट भासित होने से क्रोधादिक उत्पन्न होते हैं।

प्रश्न- क्रोधादि कब उत्पन्न नहीं होते हैं?

उत्तर- 1- तत्त्वज्ञान के अभ्यास से कोई इष्ट-अनिष्ट भासित न हो, तब स्वयंमेव ही क्रोधादिक उत्पन्न नहीं होते हैं।

2- जब यह जानेगा, अजीवतत्त्व से मेरा सर्वथा सम्बन्ध नहीं है - यह तत्त्वज्ञान है। *[श्रीमोक्षमार्गप्रकाशक, पृष्ठ 229]*

प्रश्न- अज्ञानी, अनादि से दु:खी क्यों है?

उत्तर- निज भगवान आत्मा को शरीरादि मानने से विषयों की इच्छा होती है; कषाय होती है; बाह्य सामग्री में इष्ट-अनिष्टपना मानता है, अन्यथा उपाय करता है - इसी कारण अज्ञानी, अनादि से दु:खी है।

प्रश्न- अज्ञानी का दु:ख कैसे मिटे?

उत्तर- शरीरादि से सर्वथा भिन्न अपने को ज्ञायकस्वभावी आत्मा माने, तो विषयों की इच्छा उत्पन्न ही नहीं होगी, कषाय भी नहीं होगी - विश्व के पदार्थ सर्व प्रकार ज्ञेय प्रतिभासित होंगे।

-जय गुरुदेव

दृढ़ता से सत्य-असत्य का विवेक करने में शर्म रखे तो सत्य समझ में नही आ सकता। श्री कुन्दकुन्द आचार्य, पञ्च महाव्रतधारी भावलिङ्गी सन्त थे। उनके द्वारा कहे हुए वचन, सर्वज्ञ-वीतराग के समान ही प्रमाणभूत हैं, उनसे थोड़ा भी विरुद्ध कहनेवाला मिथ्यादृष्टि और वस्तुतत्त्व का विरोध करनेवाला है।

योगसार का मर्म

प्रश्न 1– मनुष्यभव, दिगम्बरधर्म धारण करने पर, मुक्ति के मार्ग पर क्यों नहीं चल पाता है ?

उत्तर– (1) व्यापार–धन्धे में उलझा रहने से, आजीविका जुटाने में, उपलब्ध बाह्यसामग्री के भोगने में ही मग्न रहता है।

(2) थोड़ी धर्मबुद्धि हुई तो भी में शरीरादि से सर्वथा भिन्न, अपने स्वभावों से अभिन्न, स्वयं सिद्ध भगवान आत्मा हूँ – ऐसा तो नहीं जान पाया – (i) चारों अनुयोग पढ़कर पण्डित बन गया; (ii) फिर अपने मठ–मन्दिर में रहने लगा; (iii) मठाधीश बन गया; (iv) केशलुंच करके साधुओं की श्रेणी में शामिल हो गया —आदि में मग्न होने से मोक्षमार्ग से वंचित हो गया– निश्चयाभासी, व्यवहाराभासी, उभयाभासी बना रहा – जिसका फल, चारों गतियों में घूमकर निगोद ही है।

प्रश्न 2– इस विषय में योगसार, गाथा 52–53–54 में क्या कहा है ?

उत्तर– (1) व्यवहारिक धन्धों फँसे, करे न आतम ज्ञान।
यही कारण जग जीव ये, पावें नहिं निर्वाण ॥52 ॥
शास्त्र पाठी भी मूर्ख है, जो निज तत्त्व अजान।
यही कारण जग जीव ये, पावें नहि निर्वाण ॥ 53 ॥
शास्त्र पढ़ै, मठ में रहे, सिर के लुँचे केश।
पिछी–कमण्डल के धरैं, धर्म न होता लेश ॥ 47 ॥
जो सीझे अरु सीझते, जो होंगे भगवान।
वे निज आतमदर्श से, यह जानों निभ्रान्त ॥ 107 ॥
मुनिजन या कोई गृही, जो रहे आतमलीन।
शीघ्र सिद्धि–सुख को लहे, यों कहते प्रभु जिन ॥ 65 ॥

गाथा 107 व 65 में आत्मलीनता को मुक्ति प्राप्त करने का एकमात्र उपाय बताया है और आज तक जितने भी जीव सिद्ध हुए हैं, वे सभी आत्मदर्शन से ही हुए हैं और जिन जीवों को मुक्ति प्राप्ति नहीं हुई, वह भी आत्मज्ञान के न होने के कारण ही नहीं हुई और आत्मा में वास करनेवाले को अतिशीघ्र ही परमसुख की प्राप्ति होती है।

मङ्गल समर्पण

सम्यक्त्व अमूल्य माणिक्य समान है। जो जीव निरन्तर सम्यक्त्व का ध्यान करते हैं, चिन्तवन करते हैं, बारम्बार भावना करते हैं, वह निकट भव्यजीव सम्यग्दृष्टि हो जाते हैं और सम्यक्त्वरूप परिणमित जीव, दु:खदायी आठ कर्मों को क्षय करते हैं। कर्म के क्षय का प्रारम्भ सम्यग्दर्शन से ही होता है; अत: पूर्ण प्रयत्न से सर्व प्रथम उसको ही प्राप्त करने का प्रयत्न करना चाहिए।

– **श्री श्रुतसागरसूरि**

योगसार में देह-देवल में विराजमान निजभगवान आत्मा की आराधना की बातें इसलिए कही है कि (1) यदि भगवान आत्मा की खोज करनी है, तो देह-देहल में करो, तन मन्दिर में ही करो; दूसरी जगह करने में कोई लाभ होनेवाला नहीं।

यदि आत्मकल्याण करना है तो अपनी पूरी शक्ति, निज भगवान आत्मा के जानने, पहिचानने में ही लगाओ; अन्यत्र कुछ भी कार्य नहीं है।

आत्मा की आराधना करने से ही जीव, सुखी हो सकता है और यही मुक्ति का मार्ग है; दूसरा नहीं।

इस विश्व में ऐसे पुरुष विद्यमान हैं, जो निज भगवान आत्मा को जानते हैं, और आत्मा की बात ध्यान से सुनते भी हैं। निज आत्मा का ही ध्यान करनेवालों की विरलता तो और भी अधिक है।

निमित्त-नैमित्तिक

प्रश्न 1- निमित्त-नैमित्तिक को और किस नाम से सम्बोधन किया है ?

उत्तर- कारण-कार्यपना के नाम से सम्बोधन किया है।

प्रश्न 2- कारण-कार्यपना / निमित्त-नैमित्तिक के विषय में आचार्यकल्प टोडरमलजी ने क्या बताया है- इस पर ग्यारह बोल क्या हैं ?

उत्तर- 1) वहाँ जीवद्रव्य तो देखने-जाननेरूप चेतनागुण का धारक है;

2) तथा इन्द्रियगम्य न होने योग्य अमूर्तिक है;

3) संकोच-विस्तारशक्तिसहित असंख्यात प्रदेशी एक द्रव्य है;

4) तथा कर्म (कैलाशचन्द्र शरीर) है, वह चेतनागुणरहित जड़ है;

5) मूर्तिक है;

6) अनन्त पुद्गल परमाणुओं का पिण्ड है; इसलिए एक द्रव्य नहीं है (अनेक द्रव्य हैं);

7) इस प्रकार ये जीव और कर्म-कैलाशचन्द्र शरीर आदि हैं - इनका अनादि सम्बन्ध है, तो भी जीव का कोई प्रदेश, कर्मरूप (कैलाशचन्द्र शरीर आदि रूप) नहीं होता;

जो वस्तुतत्त्व के विरोध में खड़ा है, वह कष्ट को ही सहन करता है। वह भले ही सच्ची परम्परा के व्यवहार को मानता हो, नग्न दिगम्बर द्रव्यलिङ्गी हो, वह भी पराश्रय में धर्म / हित मानने से अन्तरङ्ग में सहजानन्द का अनुभव नहीं करता, किन्तु वृथा ही क्लेश / कष्ट ही सहता है, आर्तध्यान द्वारा आत्मा को दुःख देता है, क्योंकि वह स्वाश्रित स्वानुभव की शान्ति को प्राप्त नहीं होता; इसलिए अपने ही अपराध से कष्ट सहन करता है। यह बात प्रारम्भिक भूमिका में ही समझने जैसी है।

मङ्गल समर्पण

मङ्गल समर्पण

8) अपने-अपने लक्षण को, धारण किये भिन्न-भिन्न ही रहते हैं। जैसे, सोने-चाँदी का एक स्कन्ध हो, तथापि पीतादि गुणों को धारण किये सोना भिन्न रहता है और श्वेतादि गुणों को धारण किये चाँदी भिन्न रहती है; वैसे भिन्न जानना;

9) तथा इस बन्धान में जीव तथा कर्म (कैलाशचन्द्र शरीर) कोई किसी को करता तो है नहीं;

10) जब तक बंधान रहे, तब तक साथ रहे, बिछुड़े नहीं;

11) और कारण-कार्यपना (निमित्त-नैमित्तिकपना) उनके बना रहे - इतना ही यहाँ बन्धान जानना। सो मूर्तिक-अमूर्तिक के इस प्रकार बन्धान होने में कुछ विरोध है नहीं।

जीव और शरीर का भेदविज्ञान का फल :—

1) सिद्धदशा में शरीर ही नहीं है।

2) सर्वार्थसिद्धि में सब सम्यग्दृष्टि हैं; सबको शरीरादि में अपनेपन का स्वप्न भी नहीं है।

3) चारों अनुयोग इसका साक्षी हैं।

प्रश्न- धर्म की प्राप्ति कैसे हो?

उत्तर- आत्मा के परिणाम तीन प्रकार के हैं।

(1) संक्लेश, (2) विशुद्ध, और (3) शुद्ध।

(अ) जीव, केवल भाव ही कर सकता है; द्रव्यकर्म-नोकर्म की क्रिया नहीं कर सकता है।

(2) समयसार, गाथा 85 में 'शरीरादि की क्रिया मैं करता हूँ — ऐसा माननेवाला जिनमत से बाहर है। उसे द्विक्रियावादी कहा है।

(4) द्रव्यकर्म की क्रिया का कर्ता, कार्माणवर्गणा है। सुबह से शाम तक की क्रिया का कर्ता, आहारवर्गणा है, —ऐसा मानते ही भगवान से भक्त बन जाता है; धर्म और धर्म का फल प्राप्त हो जाता है।

प्रश्न- बन्ध का कारण कौन है और कौन नहीं है?

उत्तर- (1) आत्मा, रागादि के साथ जो एक्य को प्राप्त होता है। (अर्थात्, मोह-राग-द्वेष है, वही एकमात्र बन्ध का कारण है।)

अधिक कहने का क्या प्रयोजन? अतीत काल में जितने भरत, सगर, राग, पाण्डव आदि श्रेष्ठ भव्य जीवों ने मोक्ष प्राप्त किया, तथा भविष्य काल में मोक्ष प्राप्त करेंगे और वर्तमान में करते हैं, वह सम्यग्दर्शन का माहात्म्य है।

– **आचार्य कुन्दकुन्द**

(2) 1-बहु कर्मयोग्य पुद्गलों से भरा हुआ लोक, बन्ध का कारण नहीं है; 2- मन-वचन काय की क्रियारूप योग, बन्ध का कारण नहीं है; 3- अनेक प्रकार के करण, बन्ध का कारण नहीं हैं; तथा 4- चेतन-अचेतन का घात, बन्ध का कारण नहीं है।

प्रश्न - इनसे बन्ध क्यों नहीं है ?

उत्तर - (1) बहु कर्मयोग्य पुद्गलों से परिपूर्ण लोक, बन्ध का कारण हो तो सिद्धों को भी बन्ध का प्रसंग आवेगा, परन्तु उनके बन्ध होता नही है।

(2) मन-वचन-काय के योग, बन्ध के का कारण हों तो यथाख्यातचारित्रवालों के भी बन्ध का प्रसंग आवेगा, परन्तु उनको बन्ध होता नहीं है।

(3) अनेक प्रकार के करण, बन्ध के कारण हों तो केवलज्ञानियों के बन्ध का प्रसंग आवेगा, परन्तु उनको बन्ध होता नहीं है।

(4) चेतन-अचेतन का घात, बन्ध का कारण हों तो समिति में प्रवृति करनेवाले मुनियों के भी बन्ध का प्रसंग आवेगा, परन्तु उनको बन्ध होता नहीं।

प्रश्न - संसार के अभाव का उपाय क्या है ?

उत्तर - (1) शरीर को अपना न माने तो सम्पूर्ण बीमारियों का अभाव हो जाता है।

(2) शरीर बीमारी नहीं, परन्तु शरीर को अपना मानना ही बीमारी है।

(3) 'जड़-चेतन की सब परिणति प्रभु, अपने-अपने में होती है' कोई अनुकूल-प्रतिकूल नहीं है; मात्र व्यवहार से ज्ञान का ज्ञेय है।

(4) योगसार, समाधितन्त्र, परमात्मप्रकाश पढ़ो-पढ़ावो।

(5) जीव, अनादि से व्यर्थ में अजीव को अपना मानता है; वह अपना बनता नहीं है। अपना मानने के कारण ही परिभ्रमण करता है। जब उसे अपना न माने, परिभ्रमण का अभाव तुरन्त हो जाता है।

-***जय गुरुदेव***

वीतरागदेव की वाणी साक्षात् झेलकर कुन्दकुन्दाचार्यदेव ने इन शास्त्रों की रचना की है। भरतक्षेत्र में जन्म और विदेह के भगवान से भेंट! अहा, इनकी पवित्रता की और पुण्य की क्या बात! जैसे तीर्थङ्करों की पवित्रता और पुण्य दोनों महान हैं, वैसे ही आचार्यदेव को भी पवित्रता और पुण्य दोनों का कोई अलौकिक मेल हो गया है। ये तो मानो पवित्रता और पुण्य के पिण्ड हैं!......

(1) विश्व का कोई भी प्राणी, निज आत्मा से शरीर का सर्वथा सम्बन्ध नहीं है। —ऐसा मान लेगा, तभी मोक्षमार्ग शुरु हो जावेगा।

(2) श्रीमोक्षमार्गप्रकाशक, पृष्ठ 252 पर 10 बातें जानो।

(3) श्रीप्रवचनसार, गाथा 94 में विचार करो।

(4) श्रीप्रवचनसार, 19 गाथा से 194 तक देखो।

(5) पूरे जिनागम का सार —शरीर तू नहीं है। इतना मानते ही पूरा जिनागमसार आ जाता है।

(6) पर को अपना मानकर व्यर्थ में मूढ़ बना फिरता है।

–जय गुरुदेव

दिनाँक 30-4-98

प्रश्न 1– क्या आश्चर्य है ?

उत्तर – (1) आज मुझे विश्व का कोई भी प्राणी अपने-बच्चों को, ये सुखी हो जावे —ऐसी भावनावाला देखने में नहीं आता।

(2) सब क्या चाहते हैं ? इसका विवाह हो जावे, नौकरी लग जावे, इसका मकान बन जावे, इसके बच्चों हो जावे — इसी को सुखी होना मानते हैं।

(3) हे भाई ! तू क्यों पागल बनता है ? अपने में अपने को स्थाप। समयसार की प्रारम्भ की छह गाथाएँ देखो।

– जय गुरुदेव

दिनाँक 30-4-98

इसमें सदा रतिवन्त बन, इसमें सदा संतुष्ट रे।
इससे हि बन तू तृप्त, उत्तम सौख्य हो जिससे तुझे॥

(श्रीसमयसार, गाथा 206)

प्रश्न 1– क्या आज तक कोई आपको ऐसा नहीं मिला – जो अपने बच्चों को सुखी करना चाहता हो ?

मङ्गल समर्पण

सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र और तप, यह चारों आत्मा में स्थित हैं; इसलिए आत्मा ही मेरे शरण है।
– आचार्य कुन्दकुन्द

उत्तर - (1) अरे भाई ! किसी को पता ही नहीं है सुख क्या है ? मोक्ष ही सच्चा सुख है और कोई सुख है ही नहीं।

(2) बेचारे लौकिक सुखों को ही सुख मानते हैं, उन्हीं में बच्चों को लगाने का प्रयत्न करते हैं।

(3) जिनवाणी में सुख क्या है - भरा पड़ा है, कोई पढ़ने-सुनने का अवसर ही नहीं।

(4) **पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी चाहते थे, सब जीव सुखी हों -परन्तु उनकी किसी ने सुनी ही नहीं। मेरी तो सुननेवाला स्वप्न में भी नहीं दिखता। - *जय गुरुदेव***

दिनाँक 22-4-98

मोह की महिमा

(1) जैसे, मैं कैलाशचन्द्र हूँ; यह मेरी धर्मपत्नी है; यह चार मेरे लड़के हैं; यह मेरा मकान है, यह मेरा बैंक बैंलेन्स है; यह मेरी कार है।

(2) इस प्रकार अज्ञानी को इसके अलावा अपना कुछ भी दिखायी नहीं देता है।

(3) यह विश्व के प्रत्येक अज्ञानी की कहानी है।

अन्तिम भावना

प्रश्न 1- विश्व के सर्व प्राणी सुखी होवे। वे सुखी कैसे हो सकते हैं ?

उत्तर- (1) आठ भाग, संग्रहकर्ता के अनुसार पढ़े-पढ़ावे तो पार होने का अवकाश है।

(2) इन भागों को पढ़े समझे बिना, जिनागम का रहस्य समझ में नहीं आ सकता है। अत: यदि विश्व के प्राणी अभ्यास करें तो आगे बढ़ने का अवकाश है।

प्रश्न 2- भाग तो मिलते नहीं है - तो क्या करें ?

उत्तर - इन भागों में जरा भी हेर-फेर ना करके - ऐसे के ऐसे ही छपवाये (यदि आवश्यकता हो तो) कृपया इन भागों में अपनी बुद्धि के अनुसार काँट-छाँट न करे तो उत्तम रहेगा।

इस पञ्चम काल में भी निज स्वरूप का अपना काम साधनेवाले मुनि तो बहुत हुए हैं, परन्तु उनके साथ बाह्य में भगवान से भेंट करके इस मार्ग को टिकाए रखने का अलौकिक कार्य कुन्दकुन्दाचार्यदेव ने किया है। इस भरतक्षेत्र के धर्मी जीवों पर उनका महान उपकार है।

दिनाँक - 1-12-98

विशेष

सारा विश्व ज्ञेय; आत्मा ज्ञायक, यह यथार्थ बात है।

प्रश्न 1- सारा विश्व ज्ञेय और आत्मा ज्ञायक-किसने माना?

उत्तर- सिद्धभगवान ने माना।

प्रश्न 2- सारा विश्व ज्ञेय और आत्मा ज्ञायक-क्या निगोदिया के साथ भी ऐसा ही सम्बन्ध है?

उत्तर- विश्व का कोई भी प्राणी हो - निगोदिया हो - एकेन्द्रियादि हो। सब के साथ विश्व ज्ञेय; आत्मा ज्ञायक —ऐसा ही सम्बन्ध है। जिसने माना, वह पार हो गया।

प्रश्न 3- तो बताएँ किसने माना?

उत्तर- चौथे गुणस्थान से लेकर सिद्धदशा तक सबने माना और निगोद से लगाकर विश्व के मिथ्यादृष्टियों ने नहीं माना।

प्रश्न 4- सारा अज्ञानी विश्व दु:खी क्यों है?

उत्तर- ज्ञेय-ज्ञायकसम्बन्ध न मानने के ही कारण।

प्रश्न 5- जरा समझ में आये, वह बताइये?

उत्तर- (1) श्री मोक्षमार्गप्रकाशक, पृष्ठ 252 वास्तव में परद्रव्यों से मिला, स्वभावों से अभिन्न स्वयं सिद्ध भगवान आत्मा है। जो ऐसी आत्मा को नहीं समझते, उन्हें शरीरादि के द्वारा समझाते हैं।

(2) अनादि-निधनवाले मन्त्र में भी यही बताया है।

(3) जितने दिगम्बरधर्मी मन्दिर हैं, उनमें प्रतिमा भी यही शिक्षा देती हैं।

प्रश्न 6- फिर यह अज्ञानी जीव मानता क्यों नहीं?

उत्तर- चारों गतियों में व्यर्थ ही दु:ख-उठाना है; इसलिए नहीं मानता है।

तू ज्ञायक है, विश्व के साथ किसी भी अपेक्षा कोई सम्बन्ध नहीं है - यह बात यथार्थ है। जो इसको मानले, बेड़ा पार है।

आत्मा ही आत्मा की श्रद्धा करता है; आत्मा ही आत्मा का ज्ञान करता है; आत्मा ही आत्मा के साथ तत्मयपने का भाव करता है; आत्मा ही आत्मा में तपता है; आत्मा ही आत्मा में केवलज्ञानरूप ऐश्वर्य को प्राप्त करता है, इसी प्रकार चार प्रकार से आत्मा ही आत्मा की आराधना करता है; इसलिए आत्मा ही मेरे शरण है।

- आचार्य कुन्दकुन्द

प्रश्न 7– अज्ञानी दु:खी क्यों है ?

उत्तर– अज्ञानी मानता है कि मैं शरीरवाला, इन्द्रियोंवाला, स्त्री–पुत्रादि का स्वामी हूँ — ऐसा मात्र मानने के कारण ही दु:खी है। स्व–पर का भेदज्ञान ही मोक्ष का कारण है।

दिनाँक – 24–12–98

(1) ये जीव ज्यों ही आस्रवों का, त्यों ही अपनी आत्मा का; जाने विशेषान्तर तब ही, बन्धन नहीं उसको कहा।

[श्रीसमयसार, गाथा 71]

(2) (कर्ता–कर्म) जो बाह्यरूप से दिखता है, जिसका जीव के साथ किसी भी प्रकार का सम्बन्ध नहीं है; मात्र पुद्गलद्रव्य से ही सम्बन्ध है – ऐसा मानते ही दृष्टि, स्वभाव पर आ जाती है।

दिनाँक – 3–1–2000 दिन –रविवार, बुलन्दशहर

॥ श्री वीतरागाय नमः ॥

प्रश्न 1– 8–11 से 9–11 तक रात्रि की क्लास में क्या चला ?

(1) कर्ता–कर्म–एक द्रव्य में ही होता है। विश्व का कोई भी प्राणी ऐसा मानेगा, तभी सम्यग्दर्शन की प्राप्ति हो जावेगी।

(2) कैसे ?

तीन प्रकार का सम्बन्ध है — (1) नित्यतादात्म्यसिद्धसम्बन्ध, (2) अनित्यतादात्म्यसिद्ध–सम्बन्ध, (3) परस्पर अवगाह–सिद्धसम्बन्ध। अब जिनके साथ ये तीनों सम्बन्ध ही नहीं हैं, अर्थात् कोई भी सम्बन्ध नहीं है — ऐसे कैलाशचन्द्र शरीर, स्पर्श की आठ, रस की पाँच; गन्ध की दो; वर्ण की पाँच; तथा सात प्रकार के शब्द, समानजातीयद्रव्यपर्याय – असमानजातीय–द्रव्यपर्याय, धर्म–अधर्म–आकाश और काल के साथ मुझ निज आत्मा का सर्वथा सम्बन्ध नहीं है; उनमें ये मेरे, मैं इनका – इस प्रकार अहंकार–ममकार करके पागल बना रहता है।

मुनिराज को ज्यों–ज्यों आत्मध्यान की शक्ति बढ़ती जाती है, त्यों–त्यों व्यवहार छूटता जाता है। मुनिराज को इतनी शुद्धि तो प्रगट ही है कि अन्तर्मुहूर्त से अधिक उपयोग बाहर रहता ही नहीं। विकल्प आते हैं, परन्तु उनमें तत्परता नहीं। पुरुषार्थ की कमजोरी से व्यवहार में आना पड़ता है, लेकिन भावना तो बारम्बार शुद्धस्वरूप में स्थिर होने की ही रहती है। विकल्प के प्रति खेद वर्तता है। अहो! ऐसी दशा, वह यथार्थ मोक्षमार्ग है। स्वरूपलीनता ही मोक्ष का उपाय है; बीच में व्यवहार का विकल्प आता है, वह तो बन्ध का कारण है।....

मङ्गल समर्पण

जो ज्ञायकभाव है, वह अप्रमत्त भी नहीं और प्रमत्त भी नहीं है; इस प्रकार इसे शुद्ध कहते हैं और जो ज्ञायकरूप से ज्ञात हुआ, वह तो वही है; अन्य कोई नहीं। वह तो समस्त अन्य द्रव्यों के भावों से भिन्नरूप से उपासित होता हुआ शुद्ध कहलाता है।

– **आचार्य कुन्दकुन्द**

प्रश्न 2– कैलाशचन्द आदि से सम्बन्ध मानने से क्या नुकसान रहा ?

उत्तर – सम्बन्ध न होने पर भी सम्बन्ध मानने से, चौबीस घंटे अनित्य–तादात्म्यसम्बन्ध प्रगट होता है।

प्रश्न 3– तो फिर क्या होता है ?

उत्तर – चौबीस घण्टे नये कर्म का बन्ध होता है।

प्रश्न 4– सारा जीवन इसी में बीत जाता है, तो हम क्या करें ?

उत्तर – जिनसे किसी भी प्रकार का सम्बन्ध नहीं है, उन्हें अपना न माने तो तभी नित्यतादात्म्यसम्बन्ध अभेद निजभगवान पर दृष्टि आ जावेगी– तभी सम्यग्दर्शन की प्राप्ति हो जावेगी– क्रम से मोक्ष प्राप्त हो जावेगा।

समयसार का कर्ता–कर्म अधिकार तथा सर्वविशुद्धिअधिकार इसका साक्षी है।

– ***पूज्य गुरुदेव***

दिनाँक – 6–1–1999 दिन –बुधवार

विशेष

॥ श्री वीतरागाय नमः ॥

(1) पञ्चम काल में ज्ञानी का समागम; जैनकुल में जन्म; और अन्दर मोक्ष की बात उतर जाये– बड़ा भारी अचम्भा है।

(2) जिसको मोक्ष की बात जगमगायी, उन सबको नमस्कार।

(3) जब से मैंने होश सम्भाला है, सब से प्रथम परमपूज्य श्री कानजीस्वामी का समागम मिला, यह पञ्चम काल में धन्य अवसर है। साथ में आचार्यकल्प पण्डित टोडरमलजी पञ्चम गुणस्थानी महात्मा थे। उनका मोक्षमार्गप्रकाशक मिला।

(4) मोक्षमार्गप्रकाशक, अनादि का मिथ्यात्वादि का अभाव करके, मोक्ष में पहुँचने की सम्पूर्ण क्रिया का भण्डार है। अतः जो अपना भला करना चाहता है, उसे प्रथम मोक्षमार्गप्रकाशक को प्रेम से पढ़ना–विचारता आदि चाहिए — तो कल्याण का अवकाश है।

(5) **साथ में परम पूज्य श्री कानजीस्वामी ने मोक्ष कैसे पहुँचे, यह**

बताया है। उन बातों को मुझ (कैलाशचन्द्र नामधारी) को भाव आया, वह आठ भागों में भर दिया है।

अत: मोक्षमार्गप्रकाशक तथा आठ भाग अपने जीवन में उतारकर, मोक्ष के पथिक बनें।

थोड़े में

(1) जिनको अपना भला करना हो, सुखी होना हो – वे प्रेम से मोक्षमार्गप्रकाशक तथा आठ भागों का प्रेम से अभ्यास करें – इन शास्त्रों में जिनागम का सार भर दिया है। मेरे शरीर के कहनेवाले पवनकुमारजी ने भी चारों अनुयोगों की सार जिनागमसार में भरने का प्रयत्न किया, वे धन्यवाद के पात्र हैं। मेरी भावना है कि प्रत्येक आत्मार्थी को तुरन्त धर्म की प्राप्ति हो।

(2) पञ्चम काल में अवसर मिलना महान दुर्लभ है, जिसे अवसर मिला हो, उसे चूकना नहीं चाहिए।

दिनाँक – 7-1-1999

प्रश्न 1– क्या विचारना ?

उत्तर – वस्तुस्वरूप क्या है !

प्रश्न 2– वस्तुस्वरूप क्या है ?

उत्तर – (1) अनादिनिधन वस्तुएँ भिन्न-भिन्न आदि का विचार;

(2) सतद्रव्य लक्षणम्। उत्पाद व्यय ध्रौव्य युक्त सत् का विचार;

(3) प्रवचनसार की 93 गाथा – पारमेश्वरी व्यवस्था का विचार;

प्रश्न 3– और क्या विचारना ?

उत्तर – (1) अजीवतत्त्व से सर्वथा सम्बन्ध नहीं है – इतना मानते ही जीवतत्त्व पर दृष्टि आती है – मोक्षमार्ग प्रगट हो जाता है।

वास्तव में आज तक उपरोक्त बातों को मानसिकज्ञान में भी नहीं लिया। मानसिक-ज्ञान में यथार्थत: आते ही बेड़ा पार हो जाता है।

प्रतिकूल संयोगों में मुनि को देखकर, जो जीव, मुनि को दु:खी मानते हैं, उन्हें चारित्रदशा में होनेवाले सुख की खबर नहीं है। मुनि के शरीर को सिंह फाड़कर खा रहा हो, उसे देखकर अज्ञानी, उन्हें दु:खी मानता है, जबकि मुनि तो वीतरागी शान्ति में हैं। वे आत्मा के आनन्द में झूलते हैं; उन्हें दु:ख नहीं है क्योंकि मुनिराज संयोग से दु:ख नहीं मानते।

मङ्गल समर्पण

एक तो द्रव्य अपेक्षा शुद्धपना है, एक पर्याय अपेक्षा शुद्धपना है। वहाँ द्रव्य अपेक्षा तो परद्रव्य से भिन्नपना और अपने गुणों से अभिन्नपना, उसका नाम शुद्धपना है और पर्याय-अपेक्षा औपाधिकभावों का अभाव होना, शुद्धपना है।

- आचार्यकल्प पण्डित टोडरमल

दिनाँक - 7-1-1999

(1) किसी से किसी भी अपेक्षा, किसी भी प्रकार की माँग नहीं करनी चाहिए।

(2) अज्ञानी जगत, व्यर्थ में भटकता है।

(3) अच्छे-बुरे की चर्चा, अनन्त संसार है।

(4) परद्रव्यों में 'यह में' संसार है; परद्रव्यों से सर्वथा भिन्न 'यह में' यह मोक्ष है;

(5) तो तज सब परभाव / कैसे तजे ? पर को अपना न माने।

दिनाँक - 22-1-1999

॥ श्री वीतरागाय नमः ॥

तू स्थाप निज को मोक्ष पथ में, ध्याय अनुभव तू उसे।
उसमें हि नित्य विहार कर, न विहार कर परद्रव्य में॥

(1) बहुत हो चुका - आज विश्व में चारों तरफ हा-हाकार मची है; जीव, दुःखी है।

(2) क्यों दुःखी है ? व्यर्थ में, किसी के साथ किसी भी अपेक्षा, किसी भी प्रकार का सम्बन्ध नहीं है - व्यर्थ में सम्बन्ध मानकर दुःखी हो रहा है।

(3) अजीवतत्त्व - जिनमें मेरा ज्ञानदर्शन नहीं है, वे अजीवतत्त्व हैं। इनसे सर्वथा सम्बन्ध न माने, तभी अपने जीवतत्त्व पर दृष्टि आ जावेगी।

(4) तभी यथार्थ में आस्रव-बन्ध-संवर-निर्जरा-मोक्ष का पता चल जावेगा। - यह सम्यग्दर्शन है।

(5) सम्यग्दर्शन के बिना, निगोदिया जैसा जीवन है। सम्यग्दर्शन होते ही उसकी गिनती, मोक्ष में चली गयी। — धर्म आसान है।

तू अजीवतत्त्व नहीं है; तू जीवतत्त्व है - ऐसा यथार्थ ज्ञान-श्रद्धान में आते ही बेड़ा पार हो जाता है।

दिनाँक - 28-1-1999

(1) जो -जो देखी वीतराग ने, सो सो हो वीरा रे।
अण होनी कबहु ना होत, काहे होत अधीरा रे॥
समयो - एक बढ़े-घटै, नाही - जो होना है -

(2) जिस जीव का, जिस क्षेत्र में, जिस विधि से जन्म-मरण होना है; वही हो रहा है, उसी प्रकार हुआ है, उसी प्रकार होगा; व्यर्थ में आकुलता होना, पागलपना है।

(3) आज सारा अज्ञानी जीव, अशक्य कार्य में पागल बना फिरता है - जिनसे किसी भी प्रकार की सर्वथा सम्बन्ध नही है, उनमें पागल है।

(4) तू जीवतत्त्व है, तेरा अजीवतत्त्व से सर्वथा सम्बन्ध नहीं- इतना एक बार मान तो सही, फिर क्या होता है ? मोक्षमार्ग के रास्ते पर आ जावेगा।

(5) पञ्चम काल में जैनकुल, दिगम्बरधर्म, ज्ञानी का समागम मिले- अचम्भा है।

(6) ऐसा होने पर भी ना सुधरा, यह भी अचम्भा है।

(7) अपने को भूला; पर को अपना माना—इतनी ही भूल है।

दिनाँक - 29-1-1999

(1) 1- अजीवत्त्व में अपनापना माना - निगोद है।
2- अजीव में अपनापना न माने - मोक्ष है।

(2) अनादि से शरीर को अपना मानने के कारण ही दु:खी हो रहा है। जब अजीव को अपना न माने, तभी दु:ख का अभाव।

(3) आप स्वयं अनादि अनन्त है - शरीर में अपनेपने की मान्यता, एक समय की है।

(4) एक समय शरीर को अपना न माने तो मोक्षमार्ग में आ गया।

(5) अपने को शरीर माना - आत्मा नहीं माना; इसीलिए दु:खी है।

धर्मी श्रावक, मुनिराज की अद्‌भुतदशा को पहचानते हैं, उन्होंने स्वयं भी मुनियों जैसी वीतरागी शान्ति का स्वाद चखा है। मुनियों की तो क्या बात कहें ? उन्हें मात्र संज्वलनकषाय शेष रह गयी है, इसके अलावा तो वीतरागता ही है। वे केवलज्ञान के बिलकुल समीप पहुँच गये हैं, संसार के कोलाहल से दूर चैतन्य की शान्ति में ठहरकर बर्फ जैसे हो गये हैं। वाह मुनिराज! आपमें और केवली भगवान में क्या अन्तर है ?

मङ्गल समर्पण

शुद्ध आत्मा ही दर्शन (सम्यक्त्व) का आश्रय है, क्योंकि जीवादि नव पदार्थों के सद्भाव में या असद्भाव में उसके (शुद्ध आत्मा के) सद्भाव से ही सम्यग्दर्शन का सद्भाव है; अबन्ध आत्मा के आश्रय से ही सम्यग्दर्शन है।

– आचार्य कुन्दकुन्द

(6) परमपूज्य गुरुदेव का मिलान हुआ; पूज्य गुरुदेव प्रसन्न हुए और कहा केवलज्ञान की प्राप्ति हो।

(7) स्वयं जीवतत्त्व भगवान है, व्यर्थ में अजीवतत्त्व में पागल बना हुआ है। चेत-चेत, यह स्वर्ण अवसर है? तू जीवतत्त्व है; अजीवतत्त्व नहीं है। इतना मानते ही मोक्षमार्ग प्रगट हो जाता है।

दिनाँक – 30-1-1999

(1) अनादि काल से आज तक गुरु की आज्ञा का पालन एक समय भी नहीं किया।

(2) अनादि काल से आज तक अपनी प्रवृत्ति के अनुसार, गुरु की आज्ञा का पालन अनन्त बार किया।

प्रश्न 1– गुरु की आज्ञा क्या है?

उत्तर – (1) तुम जीवतत्त्व हो; अजीवतत्त्व नहीं हो।

प्रश्न 2– अज्ञानी ने क्या नहीं माना?

उत्तर – (1) केवलज्ञानी को नहीं माना।

(2) वस्तुस्वरूप को नहीं माना।

(3) कर्ता-कर्म, एक द्रव्य में होता है। – ऐसा नहीं माना।

(4) द्रव्यलिङ्गी मुनि ने ग्यारह अङ्ग नौ पूर्व का उघाड़ होने पर भी, ज्ञानी की आज्ञा का पालन एक समय भी नहीं किया।

(5) एक द्रव्य, दूसरे का कुछ नहीं कर सकता है — ऐसा नहीं माना।

(6) धर्म आसान है, किन्तु कठिन माना।

(7) वर्तमान में सत्य कहनेवाला कहीं दिखता ही नहीं।

दिनाँक – 31-1-1999

(1) स्वयं भगवान है। उसका पता न होने से अजीवतत्त्व में व्यर्थ पागल बना फिरता है।

(2) स्वयं भगवान है; उसकी ज्ञानपर्याय होती है। वह ज्ञानपर्याय, आत्मा

को बताती है, परन्तु अज्ञानी, उसमें शरीरादि निमित्त पड़ता है, उसमें चिपट जाता है और जन्म-मरण के दु:ख भोगता है।

(3) **पञ्चम काल में पूज्य श्रीकानजीस्वामी ने अनादि से जो भगवान की दिव्यध्वनि में आया, वह बताया है कि तू त्रिकाल भगवान है; शरीरादि नहीं है** - इतना माने तो अभी मोक्षमार्ग प्रगट हो जावे। अत: पर में अपने पने की बुद्धि छोड़-अभी मोक्ष के दरवाजा प्रत्यक्ष हो जावेगा।

(4) स्व में बस; पर से खस, आयेगा आत्मा में अतीन्द्रिय रस; यही है अध्यात्म का कस; इतना करो तो बस।

दिनाँक - 2-2-1999

॥ श्री वीतरागाय नमः ॥

(1) निज आत्मा को जाने, वह जैन है।

(2) जो शरीरादि को अपना माने, वह अजैन है।

(3) प्रत्येक जीव, यथार्थ में भगवान है — जीवतत्त्व है; मात्र विश्वास नहीं है।

(4) जीव में अनादि से एक-एक समय करके ज्ञानपर्याय होती है, उसमें शरीरादि निमित्त होता है; अज्ञानी उनमें व्यर्थ में अटक जाता है और चारों गतियों में घूमता हुआ, निगोद चला जाता है।

(5) जब यह जीव, शरीरादि को अपना न माने तभी आत्मा प्रत्यक्ष हो जाता है।

(6) जैनदर्शन, जैनकुल, ज्ञानी का समागम पञ्चम काल से अचम्भा है। जो जीव, सम्यक्त्वादि की प्राप्ति करता है, अचम्भा है- धन्य है! धन्य है। पञ्चम काल में धर्म की प्राप्ति।

- ***जय गुरुदेव***

अरे, देह से भिन्न मेरा अखण्ड चेतनतत्त्व क्या है और उसका अनुभव कैसा है? इसका सच्चा स्वरूप बतानेवाले वीतरागी सर्वज्ञदेव, रत्नत्रयवन्त गुरु और रागरहित धर्म व शास्त्रों को जो पहचानता है, वह जीव इनसे विरुद्ध अन्य किसी को नहीं मानता, नहीं नमता और प्रशंसा भी नहीं करता।

मङ्गल समर्पण

सम्यक्त्व से ज्ञान होता है और ज्ञान से समस्त पदार्थों की उपलब्धि होती है और वह जीव अपने कल्याण का और अकल्याण का विशेष अन्तर भेद जानता है।
– **आचार्य कुन्दकुन्द**

दिनाँक – 3-2-1999

(1) मोह सुन-सुन आवै हाँसी, अरे जीव अज्ञानी

(2) देह को जीव माने, अत: मान्यता के कारण, अज्ञानी है।

(3) अज्ञान एक समय का है – स्वयं अनादि अनन्त है, उसकी ओर दृष्टि करे, एक क्षण में संसार समाप्त हो जाता है।

(4) संसार अपनी एक समय की मूर्खता है; वह मात्र अजीवतत्त्व को अपना माना, न माने बेड़ा पार है।

दिनाँक – 5-2-1999

(1) अकेला आया – अकेला जाना है। यदि अपने को पहिचान ले, तो मोक्षमार्ग में प्रवेश हो गया, क्रम से जल्द ही मोक्ष प्राप्त हो जावेगा।

(2) सम्यग्दर्शनादि सरल है। मान्यता में भूल है। है भगवान; मानता है शरीरादि, और कुछ नहीं है। जीव जुदा-पुद्गल जुदा, बस इतना ही जैनधर्म का सार है।

दिनाँक – 6-2-1999

(1) पवन नामक शरीर की आयु.... बाकी है। दिन पर दिन एक-एक दिन कम होती चली जावेगी।

(2) गर्भ के जन्म दिन के गिनकर .... वर्ष पवन शरीर की अवस्था है।

(3) तुम अभी भगवान हो – जैसा सिद्ध कर आत्मा है, वैसा ही हो–

परन्तु

मैं पवनकुमार हूँ; इससे अहंकार होने से, पवन शरीर में स्पर्श की आठ पर्यायें, रस की पाँच पर्यायें, गन्ध की दो पर्यायें, वर्ण की पाँच पर्यायें तथा सात प्रकार की आवाज, समानजातीय -असमानजातीय में ममकार के कारण ठगों की टोली में रहते हुए – इनमें विवेक ना होने से पागल हो रहा है। सावधान! सावधान!

(4) अपने को पहिचानों, तुम सिद्धसमान भगवान हो; पवनादि नहीं

हो। यह कार्य आसान है, परन्तु विश्वास नहीं है। अन्त में यह कार्य अभी ना हुआ तो कब होगा ? चेतो-चेतो ! सावधान-सावधान।

दिनाँक - 7-2-1999

(1) आज सारे विश्व में धर्म नाम की कोई वस्तु देखने में नहीं आती है, धर्म क्या है ?

(2) चारों गतियों के अभावरूप निर्मल अतीन्द्रियदशा, धर्म है।

(3) वह कैसे प्राप्त हो ?

शरीरादि को जब अपना न माने, तभी मोक्षमार्ग की प्राप्ति कर, क्रम से मोक्ष की प्राप्ति हो जाती है। स्वयं मोक्षस्वरूप है, उसका आश्रय लेते ही मिथ्यात्वादि का अभाव होकर, सम्यग्दर्शन की प्राप्ति हो जाती है।

(4) देर क्यों लगती है ?

रास्ता उल्टा है; इसलिए, वरना देर की बात ही नहीं।

(5) पूज्य परम कानजीस्वामी 45 वर्ष तक धर्म की बात बतलाकर चले गये, उनकी बात भी किसी ने मानी नहीं। पञ्चम काल में ज्ञानी का समागम कहीं देखने में नहीं आता है।

(6) धर्म-धर्म सब ही कहे, धर्म न जाने कोई।

(7) त्रिकाल भगवान ऐसा का ऐसा पड़ा है; शरीरादि की आड़ में दिखायी नहीं देता है।

दिनाँक - 8-2-1999

॥ श्री वीतरागाय नमः ॥

(1) केवली के केवलज्ञान का विश्वास;

(2) वस्तुस्वरूप का विश्वास;

(3) आचार्यकल्प पण्डित टोडरमलजी का कहना है — जैसा वस्तुस्वरूप है, वैसा मानले, उसी समय सम्पूर्ण दु:खों का अभाव हो जावेगा।

बापू! वीतरागमार्ग और वीतरागी सन्तों के विरोधी ऐसे कुगुरु के सेवन में तो मिथ्यात्व की पुष्टि तथा तीव्र कषाय के कारण आत्मा का बहुत बुरा होता है; इसलिए उसका निषेध करते हैं। इसमें किसी व्यक्ति के प्रति द्वेषबुद्धि नहीं है, किन्तु जीवों के प्रति हितबुद्धि है।

मङ्गल समर्पण

(4) प्रवचनसार में पारमेश्वरी व्यवस्था है, उसका विश्वास कर। अरे भाई! दिगम्बरधर्म मिलने पर, ज्ञानियों का समागम मिलने पर भी दु:खी है तो वह कभी भी नहीं सुधर सकेगा। **पूज्य गुरुदेवकानजी स्वामी ने इतना स्पष्ट कर दिया, तभी नहीं समझा तो समझो, उसकी होनहार खराब है।**

(5) अब सर्व अवसर आ चुका है। हे भव्य! सावधान, चेतो-चेतो।

(6) ज्ञानी की बातें मानें, तभी दु:ख का अभाव हो जाता है। बात इतनी सी है, तू जीवतत्त्व है; अजीवतत्त्व नहीं।

दिनाँक - 8-2-1999

(1) पञ्चम काल में ज्ञानी का समागम मिले और वह दु:खी ?

(2) धन गड़ा है कहीं; खोजता है दूसरी जगह, मिलेगा ?

(3) दिल्ली की सड़क पर ना चले और दूसरे उल्टे-चले, कभी दिल्ली पहुँचेगा ?

(4) एक शास्त्र कभी ना पढ़ा हो,केवली को और वस्तुस्वरूप को माने, तभी सुखी हो जावेगा।

(5) अरे भाई! तू अकृत्रिम भगवान है, उसमें अनादि के एक-एक ज्ञानपर्याय अपने त्रिकाली भगवान की है - इसे मानता नहीं है। ज्ञान की पर्याय में जो निमित्त पड़ते हैं, उनमें अपना सिर फोड़ता है।

(6) शरीरादि का तेरे साथ सर्वथा सम्बन्ध नहीं है, एक बार मान तो सही! बेड़ा पार हो जावेगा।

(7) पञ्चम काल में ज्ञानी का मिलना हो और उसका विश्वास आ जावे, वह मोक्ष का पथिक बन गया।

दिनाँक - 9-2-1999

(1) आज सारा विश्व काम-भोग की कथा में ही रचा-पचा हुआ है; धर्म की बात सुनने का अवसर ही नहीं है।

तीन काल और तीन लोक में सम्यग्दर्शन के समान कोई हितकारी नहीं और मिथ्यात्व के समान कोई अहितकारी नहीं।

- आचार्य समन्तभद्र

(2) व्यर्थ के धन्धों में मत पड़ो। किसी को धर्म नहीं चाहिए।

(3) स्वयं भगवान है। व्यर्थ में जिसके साथ कोई सम्बन्ध ही नहीं है, उसमें पागल है।

(4) अपने को भूला, पर में अपनापना माना–इतना ही संसार है।

(5) जहाँ तक हो, किसी का भी साथ न करो।

दिनाँक - 10-2-1999

(1) अनादि काल से आजतक अपने को पहिचाना ही नहीं;

(2) अनादि काल से आजतक पर में अपनापना माना;

(3) इसलिए अनादि से आजतक दुःखी ही है।

(4) जिस समय पर को अपना ना माने, तभी आत्मा प्रत्यक्ष हो जावेगा;

(5) देर मत कर – अब सब अवसर आया है– सावधान ! सावधान !
है स्वयं जीवतत्त्व; मानता है अजीवतत्त्व – इतनी ही भूल है।

(6) जब जागे तभी सवेरा है; जब तक अपने को न जाने, अंधेरा है।

(7) अंधेरा का ज्ञान कराने में ज्ञानी ही निमित्त हो सकते हैं।

सावधान! सावधान!

दिनाँक - 13-2-1999

॥ श्री वीतरागाय नमः ॥

(1) शरीरादि को अपना माना। आत्मा को भूला –

(2) जिनसे सर्वथा सम्बन्ध नहीं है, व्यर्थ में शरीरादि को अपना मानकर, चारों गतियों में निगोद में चला जाता है।

(3) जब शरीरादि को अपना यथार्थ में ना माने, तभी आत्मा साक्षात्कार हो जाता है। उसका नाम सिद्धों में आ जाता है।

(4) 'स हि मुक्त एव' (कलश 198)

(5) दिगम्बरधर्म का योग बने, ज्ञानी का योग बने, ऐसे समय में अपने को न जाना, उसका जीवन धिक्कार है।

मेरी और जगत के समस्त पदार्थों की अवस्था क्रमबद्ध होती है — ऐसा निर्णय करनेवाला जीव, एक-एक पर्याय को नहीं देखता किन्तु द्रव्य के त्रिकाली स्वरूप को देखता है। ऐसा जीव, राग की योग्यता को नहीं देखता क्योंकि त्रिकाली स्वभाव में राग की योग्यता नहीं है — ऐसे त्रिकाली स्वभाव में एकता के बल से उसका राग दूर ही होता जाता है। ऐसे त्रिकाली स्वभाव की दृष्टि करने में, रागरहित श्रद्धा-ज्ञान का अनन्त पुरुषार्थ कार्य कर रहा है।

देव-गुरु दोनों खड़े, किसके लागू पाँय।
बहिलारी गुरु कहान की, भगवन दियो बताय॥

जय गुरुदेव

दिनाँक - 14-2-1999

॥ श्री वीतरागाय नमः ॥

(1) आज के समय में किसी से भी धर्मचर्चा करना, पागलपन है; किसी को धर्मचर्चा सुहाती ही नहीं।

(2) आज कल के जो परम पूज्य कानजीस्वामी के शिष्य कहलाते हैं, उनकी बुद्धि..... (1) क्योंकि जिसको रुपया-पैसा आदि चाहिए, (2) पाँचों इन्द्रियों के विषय चाहिए, वह बाहरीरूप से मुमुक्षु कहलाने का अधिकारी भी नहीं।

(3) नियमसार में पद्मप्रभमलधारिदेव ने कहा है - जैनधर्मी कहलाते हैं, उनसे भी वाद-विवाद मत करो; और यदि तुम्हें धर्म की प्राप्ति हुई है तो उसे पाकर हजम करो।

(4) आज के समय में किसी जीव को सम्यक्त्व होता है तो एक अचम्भा है। कहीं धर्म का योग देखने में भी नहीं आता। **मात्र जब तक गुरुदेव रहे, तब तक सोनगढ़ में देखने का मिला, परन्तु उनके जाते ही सब बातें उनके साथ चली गयी।**

(5) तुम भगवान हो; शरीरादि सर्वथा नहीं हो।

दिनाँक - 15-2-1999

(1) मनुष्यभव, मोक्ष की प्राप्ति के लिये मिला है परन्तु अज्ञानी, मकड़ी के जाल की तरह उलझ रहा है।

(2) मोक्ष कैसे हो ? निज आत्मा में पूर्ण एकाग्रता, वह मोक्ष है।

(3) वह कैसे हो ? जब यह जीव, जिनके साथ सर्वथा सम्बन्ध नहीं है, उन्हें अपना न माने तो मोक्षमार्ग प्रगट हो जावेगा। जब मोक्षमार्ग

जिस पुरुष को सम्यक्त्वरूप जल का प्रवाह निरन्तर प्रवर्तता है, उसे कर्मबन्ध नहीं होता, उसको कर्मरज का आवरण लगता नहीं और पूर्व बँधा हुआ कर्म, नाश को प्राप्त होता है।

- आचार्य कुन्दकुन्द

प्रगट हो गया – फिर मोक्ष की शंका होती ही नहीं, क्योंकि स्वयं मोक्षस्वरूप है।

(4) पञ्चम काल में धर्म की प्राप्ति आसान है, परन्तु अज्ञानी को देव-गुरु धर्म का विश्वास नहीं आता है।

(5) देव-गुरु-धर्म से क्या जानना ?

1- केवलज्ञानी के केवलज्ञान को माने;

2- वस्तुस्वरूप को मानें;

3- कर्ता-कर्म एक द्रव्य में मानें;

4- जीव, मात्र भाव ही कर सकता है;

5- तू जीवतत्त्व है; तेरा अजीवतत्त्व से सर्वथा सम्बन्ध नहीं है।

– जय गुरुदेव

दिनाँक – 16-2-1999

प्रश्न – जैसे, सिद्धभगवान निज में लीन होकर सदा के लिये सुखी हो गये हैं; उसी प्रकार होने के लिए हम क्या करें ?

उत्तर – निज आत्मा के आश्रय ले। कैसे लें ? शरीरादि को अपना न माने, तभी मोक्षमार्ग प्रगट हो जावेगा।

प्रश्न – लौकिक में भी क्या करे तो सुखी होने का अवकाश है ?

उत्तर – पर का आश्रय ना माने, अपना ही आश्रय माने तो सुखी होवेगा।

वास्तव में निज आत्मा, कैलाशचन्द्र से सर्वथा भिन्न, अपने स्वभाव से अभिन्न, स्वयं सिद्ध वस्तु है — ऐसा माने, बेड़ा पार है।

सारा विश्व, लोकमर्यादा में ही पागल बना फिरता है।

पराधीन सुपने सुख नाही।

– जय गुरुदेव

क्रमबद्धपर्याय का विश्वास करने से तो पर का, विकार का और पर्याय का आश्रय छूटकर, मात्र अभेदस्वभाव का ही आश्रय रहता है। उस स्वभाव में से राग की उत्पत्ति होती नहीं; इसलिए क्रमबद्धपर्याय की श्रद्धावाले सम्यग्दृष्टि को क्रमशः स्वभाव की एकता ही होती जाती है और राग क्रमशः दूर ही होता जाता है। स्वभावदृष्टि के कारण उसके स्वभाव की उत्पत्ति का क्रम है और राग दूर होने का क्रम है।

सम्यग्दर्शन रत्न अर्घ है – जिस जीव को विशुद्ध सम्यग्दर्शन है, वह परम्परा कल्याण को प्राप्त करता है, वह सम्यग्दर्शनरत्न लोक में सुर-असुर द्वारा पूज्य है।

– आचार्य कुन्दकुन्द

दिनाँक – 17-2-1999

(1) स्वयं अनादि-अनन्त अकृत्रिम चैत्यालय है, उसका पता न होने से, शरीरादि नो प्रकार के पक्षों में अटक गया।

(2) साक्षात् भगवान के समवसरण में गया, भगवान की ओर देखता रहा, परन्तु मैं अमूर्तिक प्रदेशों का पुञ्ज, प्रसिद्ध ज्ञानादि गुणों का धारक, अनादि निधन भगवान हूँ — ऐसा नहीं जाना।

(3) जन्म-मरण के दुःखों को भोगाता हुआ अनेक बार अरवपति बना, परन्तु अपने को नहीं जाना। अरे! दिगम्बरधर्म मिलने पर भी, ज्ञानियों का समागम मिलने पर भी, पर में ही अटक गया।

(4) एक क्षण के लिए अपने आत्मा का ध्यान आ जावे तो मोक्ष का मालिक बन गया।

(5) तू मोक्षस्वरूप है; अजीवतत्त्वरूप नहीं है – एक बार मान तो सही, बेड़ा पार है।

(6) मनुष्यभव मोक्ष के लिये मिला है, परन्तु पर का भिखारी होकर दर-दर का भिखारी बना फिरता है ।

– *जय गुरुदेव*

दिनाँक – 18-2-1999

(1) इस मनुष्यजन्म, दिगम्बरधर्म व ज्ञानियों के समागम का पञ्चम काल में मिलना दुर्लभ है। यह मोक्ष में जाने को मिला है।

(2) जो पञ्चम काल में दिगम्बरधर्म मिलने पर अपना जीवन, पर के कार्यों को अपना मानकर व्यर्थ में खो देते हैं – आचार्य खेद करते हैं।

(3) धर्म कहीं बाहर नहीं है; तू पर को अपना न मान, तो अभी तुझे अपना भगवान, जो तू स्वयं ही है, दृष्टिगोचर होगा – किसी से पूछना नहीं पड़ेगा।

(4) अपना पता चलते ही सम्पूर्ण जैनशासन क्या है ? सब दृष्टि में आ जाता है। केवली के समान ही जाना है; मात्र प्रत्यक्ष – परोक्ष का ही भेद रहता है।

– *जय गुरुदेव*

दिनाँक - 18-2-1999

दुबारा

(1) पञ्चम काल के ज्ञानियों को मैं नमस्कार करता हूँ।

(2) **पञ्चम काल श्री कानजीस्वामी का योग जिसको मिला, वह धन्य है।**

(3) जो अनादि से तीर्थङ्करों की दिव्यध्वनि में आया - उसी को महावीर भगवान के शासन में बताकर श्री कुन्दकुन्द भगवान, अमृतचन्दाचार्य, पद्मप्रभमलधारिदेव, आचार्यकल्प टोडरमलजी तो हमारे समय में नहीं रहे; उसी बात को **परम पूज्य कानजीस्वामी 45 वर्ष संसार के अभाव की बात थोड़े में बताकर चले गये - जिस बात को विदेहक्षेत्र में सीमन्धरभगवान बतला रहे हैं।**

(4) धन्य-धन्य वह, जिसे अपना पता चला, वह मोक्ष का पथिक बन गया।

(5) अपने आप का पता न होने से सारा विश्व पागल हो रहा है

- ***जय गुरुदेव***

दिनाँक - 19-2-1999

प्रश्न - श्रीसमयसार, गाथा 405 से 407 तक का मर्म क्या है?

उत्तर - (1) स्वभावरूप परिणमन हो या विभावरूप परिणमन हो परन्तु आत्मा को अपने ही परिणामों का ग्रहण-त्याग है; परद्रव्यी का (द्रव्यकर्म-नोकर्म का) ग्रहण-त्याग तो सर्वथा है ही नहीं।

(2) जिस जीव को अत्यन्त भिन्न शरीरादि अपने भासित हो - वह धर्म के लायक नहीं है।

(3) अरे जीव! शरीरादि से सर्वथा भिन्न तू ज्ञायक भगवान है - इतना जान-मान तो बेड़ा पार है।

- ***जय गुरुदेव***

सच्चे देव-शास्त्र-गुरु की श्रद्धा करने से गृहीतमिथ्यात्व दूर होता है और परमार्थ आत्मतत्त्व की श्रद्धा करने से अनादि का अगृहीतमिथ्यात्व दूर होकर अपूर्व सम्यक्त्व प्रगट होता है। परमार्थ आत्मतत्त्व का श्रद्धान करे तो देव-गुरु-शास्त्र के श्रद्धान को सच्चा व्यवहार कहा जाता है।

मङ्गल समर्पण

देव और दानवों से युक्त इस संसार में सम्यग्दर्शन सर्व द्वारा पूजने में आता है। इस रत्न का मूल्य कोई भी करने को समर्थ नहीं।

– **श्रुतसागर सूरि**

दिनाँक – 20-2-1999

निज स्वरूप की अर्न्तदृष्टि और स्वानुभवदशा जिसको प्रगट हुई है, उसे देहमय द्रव्यलिङ्ग, मोक्ष का कारण नहीं है — ऐसा सच्चा ज्ञान हो जाता है।

प्रश्न – क्या भावलिङ्गी को द्रव्यलिङ्ग होता ही नहीं ?

उत्तर – ऐसा नहीं है; होता है परन्तु वह मोक्ष का कारण नहीं है – ऐसा सत्यार्थ ज्ञान हो जाता है। अरे भाई ! व्रतादि के विकल्प भी द्रव्यलिङ्ग ही है परन्तु भावलिङ्गी उसे अपना मानते ही नहीं है। – ***जय गुरुदेव***

दिनाँक – 23-2-1999

प्रश्न – (1) अरे भाई ! इस अवसर में आज ही अनुभव कर लेना। बाकी शादी करना – यह तो दुर्घटना है।

भैय्या ! स्त्री को राजी (प्रसन्न) रखना, लड़को को राजी रखना, कमाना – अनेक व्यापारिक पाप के आरम्भ शुरु होते हैं।

अपने को भूल गया। कैसी भूल में पड़ गया ? यह मोटी भूल है।

समय था मोक्ष में जाने का, लगाया उल्टे रास्ते; भगवान जाने – कहाँ जाकर के पड़ेगा ? सावधान ! सावधान ! तू भगवान है, जीवतत्त्व है, एक बार मान तो सही। – ***जय गुरुदेव***

दिनाँक – 28-2-1999

प्रश्न – जीव, अजीव, आस्रव, बन्ध, संवर-निर्जरा-मोक्ष-ये सात तत्त्वार्थ हैं। इनका जो श्रद्धान –ऐसा ही है, अन्यथा नहीं है – ऐसा प्रतीतिभाव, सो तत्त्वार्थ श्रद्धान है – इसे समझाइये ?

	उत्तर – तत्त्व (लक्षण)	**अर्थ (लक्ष्य) सच्चा अनुभव**
(1)	जिसमें मेरा ज्ञान-दर्शन हो,	वह जीवतत्त्व है-ऐसा अनुभव।
(2)	जिनमें मेरा ज्ञान-दर्शन नहीं हो,	अजीवतत्त्व है-ऐसा अनुभव।
(3)	शुभाशुभभावों का उत्पन्न होना,	आस्रवतत्त्व है-ऐसा अनुभव।
(4)	शुभाशुभभावों में अटकना,	बन्धतत्त्व है-ऐसा अनुभव।

(5) शुद्धि का प्रगट होना, संवरतत्त्व है–ऐसा अनुभव।
(6) शुद्धि की वृद्धि, निर्जरातत्त्व है–ऐसा अनुभव।
(7) सम्पूर्ण शुद्धि का होना, मोक्षतत्त्व है–ऐसा अनुभव।

तत्त्व–अर्थ–अनुभव का होना, सो तत्त्वार्थश्रद्धान है।

इस प्रकार तथा विपरीताभिनिवेश, अर्थात् जो अन्यथा अभिप्राय, उससे रहित, वह सम्यग्दर्शन है। *[श्रीमोक्षमार्गप्रकाशक, पृष्ठ 315]*

– ***जय गुरुदेव***

दिनाँक – 3–3–1999

(1) स्वयं है जीवतत्त्व और अपने को मानता है शरीर; इसलिए धर्म की प्राप्ति नहीं होती है।

(2) आत्मा का कार्य ज्ञाता–दृष्टा है; मानता है शरीर की क्रियाओं को अपना; इसलिए धर्म की प्राप्ति नहीं होती है।

(3) ज्ञान और सुख, आत्मा से भरा हुआ है। उसकी ओर दृष्टि करते ही सच्चा ज्ञान और अतीन्द्रियसुख की शुरुआत हो जाती है —परन्तु ज्ञान, ज्ञेयों से; कर्म के क्षयोपशम से; इन्द्रियों से तथा पाँच इन्द्रियों के विषयों में सुख मानता है; इसलिए ज्ञान और सुख की प्राप्ति नहीं होती है।

(4) जिनके साथ सर्वथा सम्बन्ध नहीं है, उनसे सम्बन्ध मानता है; इसलिए सुख की प्राप्ति नहीं होती है।

(5) जैनदर्शन, अर्थात् विश्वदर्शन है; अर्थात् सारा विश्व ज्ञेय और मुझ आत्मा ज्ञायक —ऐसा माने–जाने तो तुरन्त सुख की शुरुआत हो जाती है।

(6) श्रीसमयसार, श्रीप्रवचनसार, श्रीनियमसार, श्रीमोक्षमार्ग –प्रकाशक, तथा परमपूज्य श्री कानजीस्वामी के प्रवचन आज विश्व में अलौकिक हैं – जो साक्षात् मोक्ष को बताते हैं।

– ***जय गुरुदेव***

सच्चे देव–गुरु–शास्त्र तो ऐसा कहते हैं कि तेरा तत्त्व स्वयं से पूर्ण है। हम पृथक् हैं और तू पृथक् है। कहीं हमारे आश्रय से तेरा तत्त्व विद्यमान नहीं है। तेरे आत्मा को हमने उत्पन्न नहीं किया है कि तुझे हमारा आधार हो। जगत में समस्त तत्त्व अनादि –अनन्त स्वयंसिद्ध भिन्न–भिन्न और परिपूर्ण हैं। हमारा अवलम्बन करने से तेरा सम्यग्ज्ञान या वीतरागता विकसित नहीं होंगे। हमारे आश्रय के बिना और हमारी अपेक्षा के बिना, अपने स्वभाव के अवलम्बन से ही तुझे सम्यग्ज्ञान और वीतरागता होगी।

मङ्गल समर्पण

मङ्गल समर्पण

जीवादि नव पदार्थों का विपरीत अभिनिवेशरहित श्रद्धान करना, वह सम्यग्दर्शन है। उन पदार्थों में भूतार्थ द्वारा अभिगत पदार्थों में शुद्धात्मा का भिन्नरूप से सम्यक् अवलोकन करना, सम्यग्दर्शन है।

– आचार्य जयसेन

दिनाँक – 4-3-1999

(1) **आज विश्व में सत्य बात का कहनेवाला महात्मा मिलना दुर्लभ है।**

(2) 86 वर्ष कैलाशचन्द्र शरीर की आयु है। **इसमें तो मुझे पूज्य श्री कानजीस्वामी ही मेरे उपकारी हैं। जो बात अनादि से तीर्थङ्करों ने बतायी है; उसी बात को महावीर भगवान ने बतायी है; उसी बात को आज विदेहक्षेत्र में पूज्य श्री सीमंधरभगवान बतला रहे हैं – कुन्दकुन्द भगवान, विदेहक्षेत्र गये, आठ दिन रहकर विश्व के प्राणियों को सुखी होने का उपाय बताया – उसी प्रकार 45 वर्ष परमपूज्य कानजीस्वामीजी बताकर चले गये।**

प्रश्न – क्या बात है ?

उत्तर – तू जीवतत्त्व है; तेरा अजीवतत्त्व से सर्वथा सम्बन्ध नहीं है – इतना मानते, श्रद्धान करते ही मोक्षमार्ग प्रगट हो जाता है। – ***जय गुरुदेव***

दिनाँक – 5-3-1999

(1) अजीवतत्त्व को किसी भी आत्मा ने त्रिकाल में स्पर्शा भी नहीं है। यह अज्ञानी, विश्व में व्यर्थ में घूम रहा है। जब कभी भी – किसी भी काल में, किसी भी क्षेत्र में यह अज्ञानी, अजीवतत्त्व से मेरा सर्वथा सम्बन्ध नहीं है – ऐसा मानेगा, उसी समय आत्मा प्रत्यक्ष हो जावेगा।

(2) आत्मा प्रत्यक्ष होते ही सारे जैनशासन का, बारह अङ्ग का ज्ञाता हो जावेगा, केवली के जानने में – और ज्ञानी के जानने में मात्र प्रत्यक्ष-परोक्ष का ही अन्तर है।

(3) मेरठ के मुमुक्षुओं से मिलकर, आज मुझे बड़ी प्रसन्नता हुई। **मेरी भावना है —विश्व का प्रत्येक जीव आज ही धर्म प्राप्त करे।**

(4) अरे! धर्म आसान है, तेरे पास ही सब चीज है; पर से उसका-अपनी चीज का सर्वथा सम्बन्ध नहीं है। – ***जय गुरुदेव***

दिनाँक - 6-3-1999

(1) श्री समयसारजी में एक-एक शब्द में वीतरागता ही भरी है। कुन्दकुन्दभगवान ने विदेहक्षेत्र से आकर इसकी रचना की है।

(2) जिसके हाथ में समयसार आया, समझो विश्व की लौकिक सम्पाद कुछ नहीं।

(3) अपनी सम्पदा ऐसी है, एक बार ज्ञान-श्रद्धान हो जावे तो वह 'स हि मुक्त एव' बन जाता है।

(4) पञ्चम काल में धर्म चर्चा, उसका अनुभव दुर्लभ है - जो जीव आज धर्म प्राप्त करते हैं, वे धन्य हैं। ***- जय गुरुदेव***

दिनाँक - 10-3-1999

प्रश्न 1- श्रीमोक्षमार्गप्रकाशक, पृष्ठ 306 में जो आत्मा का अनुभव का उपाय बताया है - यह समयसार जी में कौनसी गाथा में आया है।

उत्तर - अरे! श्रीसमयसार, गाथा 17-18में आया है।

(1) **जब परम पूज्य श्री कानजीस्वामी का नैरोबी में समवसरण गया था, तब उनकी दिव्यध्वनि में गाथा 17-18 को ही समझाया गया था।**

(2) जिसकी होनहार अच्छी हो - उसे ही यह बात ध्यान में आवेगी। वास्तव में विश्व के संज्ञी पंचेन्द्रियों को इतना ज्ञान का उघाड़ प्रगट है, परन्तु पाँचों इन्द्रियों में सुखी मानकर सो रहे हैं। **पूज्य गुरुदेव ने अनेकों बार - सोनगढ़ में दिव्यध्वनि में 19 बार विश्व को माल परोसा है - धन्य, जो उसे सुने-जाने-श्रद्धान करे।**

- जय गुरुदेव

दिनाँक - 12-3-1999

नमः समयसाराय स्वानुभूतिया चकासते।
चित्स्वभाव भावाय, सर्वभावान्तरच्छिदे:॥

व्यवहार के समस्त भंग-भेदरहित, शुद्ध परिपूर्ण आत्मस्वभाव की श्रद्धा करने का प्रयोजन होने से, वह व्यवहार गौण है, हेयरूप है और अखण्ड चैतन्यतत्त्व का आश्रय करना निश्चय है, वही उपादेयरूप है। मैं आत्मा परिपूर्ण चैतन्यरूप निरावलम्बी हूँ — ऐसी श्रद्धा करके उसका आश्रय करे और वाणी का आश्रय छोड़ दे, तब निश्चयश्रद्धा-ज्ञान प्रगट होते हैं और तभी श्रुत को निमित्तरूप कहा जाता है।

मङ्गल समर्पण

मङ्गल समर्पण

‘कालसहित पञ्चास्तिकाय के भेदरूप नव पदार्थ, वे वास्तव में ‘भाव’ हैं। उन ‘भावों का’ मिथ्यादर्शन के उदय से प्राप्त होनेवाला जो अश्रद्धान, उसके अभावस्वभाववाला जो भावान्तर (नव पदार्थों के श्रद्धानरूप भाव) श्रद्धान, वह सम्यग्दर्शन है।’

– **आचार्य जयसेन**

(1) अहो! अहो! भगवान अमृतचन्द्राचार्य ने इस कलश में चारों अनुयोगों का सार भर दिया है।

(2) 1-समय – तू जीवतत्त्व है। सार, अर्थात् द्रव्यकर्म-नाकर्म-भावकर्म से रहित।

2- द्रव्यकर्म – नोकर्म में अजीवतत्त्व आया।

(3) भावकर्म में आस्रव-बन्ध, पुण्य-पाप आ गये।

(4) द्रव्यकर्म-नोकर्म-भावकर्म से सर्वथा भिन्न —ऐसा मानते ही संवर-निर्जरा-मोक्ष आ गया।

(5) 1- इस कलश को समझने के लिये पहले पाँचवा भाग का पहला पाठ पढ़ें।

2- श्रीसमयसार प्रवचन पहला भाग पढ़ें।

(6) अपनी महिमा के लिये 11 बोल विचारें।

– ***जय गुरुदेव***

दिनाँक – 13-3-1999

(1) आज सारे विश्व को मिथ्यात्व ऐसा दृढ़ हो गया है कि ज्ञानी का समागम मिलने पर भी और दिन-रात पढ़ने – विचारने पर, हाँ-हाँ कहने पर भी, सही बात गले नहीं उतरती है।

(2) जिनके साथ सर्वथा सम्बन्ध नहीं है, उन्हें यह मैं – ये मेरे- इस मान्यता में पागल हुआ फिरता है।

(3) विशेषरूप से पहले जन्म से अकेला आया, यहाँ आने पर औदारिकशरीर का योग बना, इसे अपना मानने लगा – इसके सम्बन्ध से स्त्री-पुत्र-मकान आदि में फँसा रहता है, जीवन पूरा करके अन्य आयु में चला जाता है।

(4) तू जीवतत्त्व है, तेरा अजीवतत्त्व से सर्वथा सम्बन्ध नहीं है – एक बार मानकर देख – फिर क्या होता है; किसी से पूछना नहीं पड़ेगा।

– ***जय गुरुदेव***

दिनाँक - 14-3-1999

(1) जब तक छह सामान्यगुण, चार अभाव; छह कारक का सही ज्ञान ना हो तो जैनशासन का मर्म दृष्टि में नहीं आ सकता है।

(2) धर्म का सम्बन्ध, मात्र आत्मा से ही है; शरीरादि से सर्वथा सम्बन्ध नहीं है।

(3) जिससे सर्वथा सम्बन्ध नहीं है, उसे अपना मानकर जीवन बरबाद कर रहा है। तू भगवान है, तू शरीरादि नहीं है, बस इतनी ही बात है। ***- जय गुरुदेव***

दिनाँक - 15-3-1999

(1) आज विश्व को धर्म की बात रुचती ही नहीं है। वर्तमान में सत्य बात को बतलानेवाला कोई दृष्टिगोचर नहीं होता है।

(2) बात जरी सी है -

जीव जुदा - पुद्गल जुदा - इतना मानना है।

(3) तू धर्मस्वरूप है। धर्म कहीं बाहर से नहीं आता है। जैसे, कच्चा चना बोने से उगता है, भून लेने पर फिर उगता नहीं है; उसी प्रकार अजीवतत्त्व को अपना मानने के कारण ही जीव भ्रमण करता है; जब न माने, तभी आत्मा दृष्टि में आ जावेगा। ***- जय गुरुदेव***

(1) आज विश्व में किसी को अपने कल्याण की पड़ी ही नहीं; मात्र सांसारिक भोगों की इच्छा में अज्ञानी जीव जल रहा है।

(2) अरे भाई! यह धर्मकार्य आसान है, अभी कर - अगला समय आया न आया।

(3) मनुष्यजन्म और दिगम्बरधर्म मिलने पर न समझा तो जीव कहाँ जाकर पड़ेगा। ***- जय गुरुदेव***

हे भाई! अपने ज्ञान में तू पर की रुचि और ममत्व छोड़कर, अपनी वर्तमान पर्याय में त्रिकाली चैतन्यस्वभाव की रुचि तो कर! अपनी पर्याय को अपने द्रव्य के साथ मेल तो कर! यदि अपनी पर्याय को अपने द्रव्य के साथ अभेद करके, उसका विश्वास करे तो अपने द्रव्य में से आनेवाले अतीन्द्रिय आह्लाद का अनुभव तुझे उस पर्याय में हो!

मङ्गल समर्पण

दिनाँक – 20-3-1999

(1) **पूज्य श्रीकानजी स्वामी का उदय मोक्षमार्ग प्राप्त करके मोक्ष में जाने को मिला था – वह आज मुमुक्षु समाज ने खो दिया।**

(2) वाह रे पञ्चम काल की बलिहारी! ज्ञानी का समागम मिलने पर भी न समझा – तो क्या दशा होगी। यह केवली जाने।

(3) मेरी भावना है —मुमुक्षु कहलानेवाले, अपनी 'मैं' छोड़कर, आत्मसन्मुख होवें। – ***जय गुरुदेव***

दिनाँक – 21-3-1999

(1) चारों अनुयोगों में सात तत्त्वों का ही वर्णन है।

(2) जैनदर्शन के दिगम्बर शास्त्रों का मिलना – इस समय कितना आसान है, परन्तु किसी को पढ़ने-पढ़ाने की फुर्सत ही नहीं है।

(3) श्रीपरमात्मप्रकाश, श्रीसमाधितन्त्र, श्रीयोगसार, श्रीइष्टोपदेश — इन शास्त्रों का सार है कि तू अभी साक्षात् शक्तिरूप से भगवान है, तू व्यर्थ में शरीरादि अजीवतत्त्व में पागल हो रहा है। जब यह जीव, शरीर से सर्वथा भिन्न मैं भगवान हूँ —ऐसा जानेगा – निर्णय करेगा तो मोक्षमार्ग में इसका प्रवेश हो जाएगा।

– ***जय गुरुदेव***

दिनाँक – 23-3-1999

(1) श्रीसमयसार, श्रीप्रवचनसार, श्रीनियमसार, श्रीपञ्चास्किाय, श्रीअष्टपाहुड, श्रीमोक्षमार्गप्रकाशक, ये सब विश्व की विभूति हैं।

(2) **परम पूज्य श्री कानजीस्वामी ने 45 वर्षों में मिथ्यात्वादि का अभाव होकर, सम्यक्त्वादि की प्राप्ति कैसे हो – इसके लिए अपनी देशना दी है। जिसकी होनहार हो, उसे ही यह बात गले उतर जाती है।**

– ***जय गुरुदेव***

अन्तरङ्ग और बहिरङ्ग दोनों प्रकार के परिग्रह से रहित, उत्कृष्ट शुद्धोपयोगी मुनि उत्तम अन्तरात्मा है। अविरत-सम्यग्दृष्टि जघन्य अन्तरात्मा है। उक्त दोनों की मध्य दशावर्ती श्रावक और मुनिराज सभी मध्य अन्तरात्मा है।

– **पद्मप्रभमलधारिदेव**

दिनाँक - 8-4-1999

मेरी भावना

(1) अनादि से अनन्त काल तक जितने ज्ञानी हैं, हुए हैं, या होंगे — उन सबकी साक्षी से मुझे यह भाव आया है कि जब तक कैलाशचन्द्र शरीर का सम्बन्ध है, तब तक मैं जिन आठ भागों का मैंने संग्रह किया है — उनहें दुबारा (बड़े टाईप में / बीच के टाईप में) छपवाया जावे, तथा जितना मेरे से हो सकेगा, इन सबको पढ़ाने जाऊँगा।

(2) इन आठ भागों को समझे बिना, जिनवाणी में प्रवेश नहीं हो सकेगा —ऐसा मुझे लगता है। इस भावना से मुझ भाव आया है।

(3) इन भागों में मात्र इतना ही समझाना है कि भाई! तेरा शरीरादि से सर्वथा सम्बन्ध नहीं है - इतनी ही बात चारों अनुयोगों में अनादि से दिव्यध्वनि में आयी है, और आती रहेंगी — मात्र इनमें (भागों में) सरल भाषा में समझाया है।

(4) मुझे लगता है, इस कार्य में जिससे भी मैं कहूँगा, पूरी तरह सजग रहेगा तथा देहरादून मण्डल तथा विश्व में जहाँ-जहाँ मैं पढ़ाने गया हूँ - वह मेरे साथ ही रहेंगे।

(5) दूसरे विचारे, जो विरोध की भाषा में बोलते हैं, उन्हें जिनवाणी का रहस्य पता नहीं है क्योंकि जब तक अपना ज्ञान ना हो, उसे दिव्यध्वनि का रहस्य समझ में न आ सकेगा।

(6) मेरी भावना है कि आज सारा विश्व सुखी हो।

(7) मैं अन्त में विश्व के ज्ञानियों को नमस्कार करके भावना भाता हूँ, मुझे इस कार्य में सफलता मिलेगी, क्योंकि यह अनादि-अनन्त सत्य बात है।

(8) इस कार्य में विशेषरूप से जिनको तत्त्व का सही अभ्यास है, वे सब मेरे साथ हैं ही तथा जिनको पता नहीं — वे भी सुखी हों।

- ***जय गुरुदेव***

अहो! सारा जगत् स्वतन्त्र और परिपूर्ण है; जड़ और चेतन प्रत्येक पदार्थ अपने स्वभाव से परिपूर्ण हैं। इसमें तो वीतरागता और सर्वज्ञता ही आ जाती है। ऐसे स्वतन्त्र वस्तुस्वभाव को न मानकर, आत्मा के कारण पर की क्रिया होती है और परवस्तु के अवलम्बन से आत्मा को श्रद्धा-ज्ञान-आनन्द होते हैं — ऐसी मान्यता मिथ्यात्व है, भ्रम है; वही संसार है, वही अधर्म है और वही महापाप है।

मङ्गल समर्पण

इन सब भागों में क्या कैसा है ?

(1) टाईप – जिनागमसार जैसा होगा।

(2) छहढ़ाला में पहली ढ़ाल जो तीसरे भाग में है तथा छहढ़ाला सम्बन्धी प्रश्नोत्तर – जो तीसरे भाग में है तथा कुछ आठवें भाग में – तथा पहली ढ़ाल को दुबारा छोटे में करना है।

(3) पहला–दूसरा–चौथा–पाँचवाँ–छठे में कुछ नहीं करना है, मात्र कोई बात यदि कई बार आदि हैं तो उसे हटाना है।

(4) सातवें भाग – 10 हजार छपेगा, दूसरे भाग पाँच हजार छपेंगे।

(5) मात्र सात ही रहेंगे, छहढ़ाला गिन कर आठ हो जावेंगे।

– ***जय गुरुदेव***

दिनाँक – 9-4-1999

धर्म करत संसार सुख, धरम करत निर्वाण।
धर्मपन्थ साधै बिना, नर तिर्यंच समान॥

(1) आप विश्व में आत्मकल्याण की भावना तो कहीं दिखायी नहीं देती है।

(2) आज के समय में यदि जीव सही निर्णय करे तो तुरन्त धर्म की प्राप्ति हो जाती है। तू तो जीवतत्त्व हैं, इतना ही निर्णय करना है।

(3) विश्व के जीवों को फँसने की जगह सब हैं परन्तु बन्धन से छुटने की जगह कहीं दिखायी नहीं देती हैं, छूटने की चर्चा भी कहीं नहीं है।

(4) जो पञ्चम काल में धर्म प्राप्त करता है, अचम्भा है, वह धन्य है!

— ***जय गुरुदेव***

दिनाँक – 10-4-1999

देव-गुरु दोनों खड़ें, किसके लागू पाँय।
बलिहारी गुरु कहान की, भगवन दियो बताय॥

मङ्गल समर्पण

वस्तु तो द्रव्य है और द्रव्य का निजभाव द्रव्य के साथ ही रहता है तथा निमित्त–नैमित्तिकभाव का अभाव ही होता है; इसलिए शुद्धनय से जीव को जानने से ही सम्यग्दर्शन की प्राप्ति हो सकती है। जब तक भिन्न–भिन्न नव पदार्थों को जाने और शुद्धनय से आत्मा को न जाने, तब तक पर्यायबुद्धि है, अर्थात् मिथ्यादृष्टि है।

– पण्डित जयचन्द छाबड़ा

(1) दिगम्बर शास्त्र - श्रीसमयसार, श्रीप्रवचनसार, श्रीनियमसार, श्रीपञ्चास्तिकाय, श्रीमोक्षपाहुड़, श्रीमोक्षमार्गप्रकाशक आदि साक्षात् दिव्यध्वनी से आये शास्त्र हैं - प्रत्येक आत्मार्थी को प्रेम से, इनका आत्मकल्याण के लिए अभ्यास करना चाहिए।

(2) जैन सिद्धान्त प्रवेश रत्नमाला के आठ भाग का यथार्थ अभ्यास किए बिना, जिनवाणी का रहस्य दृष्टि में नहीं आवेगा — ऐसा मुझे लगता है।

(3) हे! भव्य जीवों! देव-गुरु की आज्ञानुसार जिनवाणी का अभ्यास करो।

(4) वाह रे पञ्चम काल! कहीं ज्ञानी दिखायी भी नहीं देते। भावलिङ्गी मुनि, देशचारित श्रावक भी मुझे देखने को नहीं मिले; मात्र कहीं जगुनु की तरह सम्यग्दृष्टि ही दिखायी पड़े।

- जय गुरुदेव

तू अकृत्रिम चैत्यालय है - इस बात को कहनेवाला कहीं दिखता ही नहीं है - मात्र परमपूज्य श्री कानजीस्वामी ही इस बात को बतलानेवाले मिले। समयसारादि में डंके चोट से बताया है। *- जय गुरुदेव*

दिनाँक - 14-4-1999

(1) स्व-पर का अयथार्थ श्रद्धान होने से जीव दुःखी होता है। जब स्व-पर का यथार्थ श्रद्धान करे, तभी मोक्षमार्ग प्रगट हो जाता है, क्रम से मोक्ष को प्राप्त हो जाता है।

(2) जैनधर्म कहो; विश्व धर्म कहो; विश्व को दुःखों से छुड़ाकर आत्मिकसुख की प्राप्ति कहो — एक ही बात है।

(3) जीव, मात्र एक समय की भूल के कारण ही भ्रमण करता है। एक समय की भूल क्या है? अपने को भूला - पर को अपना माना।

(4) चारों अनुयोग वीतरागता को बतानेवाले हैं; चारों अनुयोगों से मात्र तू जीवतत्व है-अजीवतत्त्व नहीं है —इतना यथार्थ मानते ही बेड़ा पार हो जाता है। *- जय गुरुदेव*

जिन्हें जगत् की चिन्ता छोड़कर, आत्मा की चिन्ता की पकड़ भी हुई है कि अहो! मैंने अपने आत्मा को अनन्त काल से पहचाना नहीं, अनन्त काल में कभी आत्मा का ध्यान नहीं किया; आत्मा को भूलकर बाह्य पदार्थों की चिन्ता में ही परिभ्रमण किया है; अब, सत्समागम से आत्मा को जानकर, उसी का ध्यान करनेयोग्य है - ऐसी आत्मा की चिन्ता का परिग्रह करे, पकड़ करे, उसका जीवन भी प्रशंसनीय है।

दिनाँक - 14-4-1999

(1) जो जीव, शरीर की अपेक्षा जहाँ जन्म हो गया, इसी में रम गया - उसको सच्ची बात बतलानेवाला मिला ही नहीं। **आज 86 वर्षों में पूज्य श्री कानजीस्वामी के अलावा मुझे सत्य** जाननेवाला दिखा ही नहीं, परन्तु अपनी खोटी मान्यता को, गुरुदेव का नाम लेकर पोषण करता दिखता है।

(2) जैनदर्शन यथार्थ है। केवली को माने - वस्तुस्वरूप को माने, बेड़ा पार तुरन्त हो जाता है - अरे भाई! जैनकुल, दिगम्बरधर्म मात्र मोक्ष के अर्थ है। ***जय गुरुदेव - जय गुरुदेव***

दिनाँक - 16-4-1999

(1) मुझ आज से दशवें महीने तक यहीं रहना है, बीच में मेरठ आदि। हफ्ते को जाना पड़े तो आऊँगा, जो प्रोग्राम पहले पवनजी से तय है, वही रहेगा।

(2) मुमुक्षुओं के बीच ही रहना है।

(3) परन्तु मुमुक्षु कहीं दिखायी ही नहीं देते, मात्र गुरुदेव-गुरुदेव कहनेवाले, एक या दो बार मन्दिर या स्वाध्यायभवन में कुछ पढ़लें, वे अपने को अच्छा मानते हैं - और कोई बात आवे, विरुद्ध कहे लड़ने-मरने को तैयार हों - ऐसे मुमुक्षु के बीच ही सही; सच्चा तो मुझे कोई दिखता ही नहीं। - ***जय गुरुदेव***

दिनाँक - 17-4-1999

(1) आज चाहे मुमुक्षु हो या दूसरा हो - अपने लड़के या लड़की को उच्च शिक्षा लौकिक में पढ़ाने में व्यस्त है - फिर उसका विवाह पैसेवाले के यहाँ हो जावे, वह अपने को धन्य मानता है।

(2) देखकर रोना आता है - इस हालात में बच्चों का क्या होना है ?

(3) **आज सब जगह काम-भोग की ही वार्ता सुनाई देती है। आत्मकल्याण की बात परम पूज्य श्रीकानजीस्वामी ने 45 वर्ष विश्व को बतायी - परन्तु किसी ने ग्रहण नहीं किया - अचम्भा है।** ***-जय गुरुदेव***

जिसे स्व-पर का श्रद्धान नहीं है और जिनमत में कहे जो देव-गुरु-धर्म, उन्हीं को मानता है व सप्त तत्त्वों को मानता है; अन्य मत में कहे देवादि को नहीं मानता है, तो इस प्रकार केवल व्यवहार-सम्यक्त्व से सम्यक्त्वी नाम नहीं पाता।

- आचार्यकल्प पण्डित टोडरमल

दिनाँक - 18-4-1999

(1) आज देहरादून मुमुक्षु मण्डल, बच्चों की अन्तराक्षरी के रूप में तत्त्व की बात बच्चों के गले उतारना चाहता है। इसमें बीनाजी का जो प्रयास अच्छा है।

(2) परन्तु अपनी किसी को नहीं पड़ी है, यह भी गुरुदेव की आड़ की बात करते हैं। नतीजा कुछ नहीं।

(3) आज अपने बच्चे-बच्चियों को व्यर्थ में पढ़ाने-लिखाने में समय बरबाद कर रहा है। क्या किया जावे - किसी के ध्यान में बात आती नहीं।

(4) बात क्या है ? - तू भगवान है; तेरा पर से सर्वथा सम्बन्ध नहीं है - इतना यथार्थ माने तो मोक्षमार्ग दृष्टि में आ जाता है।

(5) **मोक्षमहल का दरवाजा बतलानेवाले मुझे श्री कानजीस्वामी ही मिले।** ***- जय गुरुदेव***

दिनाँक - 19-4-1999

मैं 2½ महीने अलीगढ़ रहा; 1½ महीने बुलन्दशहर रहा; 1 महीने मेरठ रहा; 10 दिन मुजफ्फरनगर रहा; 5 दिन हरिद्वार रहा; 15-11-99 को देहरादून आया - आज 19-4-99 है।

सब जगह शरीर में एकत्वबुद्धि से ही पागल है। जैनधर्म मिलने पर भी सही बात समझ में नहीं आती है।

अरे भाई! तू अजीवतत्त्व नहीं है —इतना निर्णय करते ही अतीन्द्रिय आनन्द का स्वयं स्व-संवेदन हो जाता है; आस्रव-बन्ध भागने शुरु हो जाते हैं; संवर - निर्जरा की प्राप्ति कर, क्रम से मोक्ष का पथिक बन जाता है।

सारा विश्व, शरीर की अवस्था अपनी मानने के कारण ही दु:खी हो रहा है। शरीर में सुख -दु:ख की अवस्था ही नहीं है। ***- जय गुरुदेव***

दिनाँक - 22-4-1999

अहो! जो इस चैतन्यस्वभाव का भान प्रगट करके, ध्यान में उसे ध्याता है, उसकी महिमा की क्या बात करना! उसने तो कार्य प्रगट कर लिया है; इसलिए वह तो कृतकृत्य है ही, परन्तु जिसने उसके कारणरूप रुचि प्रगट की है, अर्थात् जिसे यह चिन्ता प्रगट हुई है कि अहो! मेरा कार्य कैसे प्रगट हो ? मुझे अन्दर से आनन्दकन्द आत्मा का अनुभव कैसे प्रगट हो ? उस आत्मा का जीवन भी धन्य है, संसार में उसका जीवन प्रशंसनीय है - ऐसा सन्त-आचार्य कहते हैं।

मङ्गल समर्पण

(1) शरीर मैं कैन्सर है–

(2) एक ज्ञानी है – एक अज्ञानी है।

I- दोनों चिल्ला रहे हैं।

II- अज्ञानी तो शरीर में कैन्सर होने से अपने को दु:खी मानता है और चिल्लाना मानता है।

III- ज्ञानी अपने स्थिर नहीं रह सका, शरीर के कैन्सर के कारण जरा भी नहीं, परन्तु शरीर में अस्थिरता सम्बन्धी विकल्प होने से वह दु:खी है; वस्तुत: वह दु:ख ही नहीं है। चिल्लाना सर्वथा भाषावर्गणा का ही कार्य है।

IV- पाँचों पाण्डवों का विचार करो– **– *जय गुरुदेव***

दिनाँक – 23-4-1999

अरे भव्य जीवों!

I- एक द्रव्य का, दूसरे से सर्वथा सम्बन्ध नहीं है।

II- कर्ता–कर्म, एक द्रव्य में ही है; दो में नहीं।

III- तुम अरूपी चेतना–ज्ञान के धारी हो; रूपी जड़ के धारी नहीं हो – इतना मानसिक ज्ञान में निर्णय करो – शान्ति तुम्हारे पास है। जीव जुदा – पुद्गल जुदा, यही तत्त्व का सार है। समयसार की तीसरी गाथा तथा मोक्षमार्ग प्रकाशक के अनादि निधन के मन्त्रों को विचारो। **– *जय गुरुदेव***

दिनाँक – 25-4-1999

(1) आज जम्बूस्वामी के वैराग्य पर महिला मण्डल ने प्रदर्शन किया। मुझे देखकर रोना आ रहा था — यदि ऐसा हृदय में बैठ जावे तो बेड़ा पार हो जावे।

(2) बाद में देखा, प्रदर्शन करनेवालों को अन्दर जरा भी वैराग्य नहीं है; मात्र बाहर दिखावा और लोग कहे बहुत अच्छा —इससे ज्यादा कुछ नहीं।

(3) वाह रे पञ्चम काल! आज सत्य बात का, सुनने पर भी विचार

....परन्तु व्यवहार तो उपचार का नाम है, सो उपचार भी तो तब बनता है, जब सत्यभूत निश्चयरत्नत्रयादि के कारणादि हो।

– आचार्यकल्प पण्डित टोडरमल

भी नहीं आता है।

जिसकी दृष्टि में आत्मा आ गया, उसका जन्म-मरण का अभाव हो गया।

(4) कार्यकर्ता कह रहे थे —पाँच भाई आये, हमने पाँच को खाना खिलाया- अरे भाई ! यह लौकिक होशियारी निगोद की सैर है।

- ***जय गुरुदेव***

दिनाँक - 26-4-1999

(1) आज कोई समझेगा —मुझे लगता नहीं है।

(2) काम-भोग की कथा में सारा विश्व पागल है, उसी की चर्चा करते हैं। आत्मा से सर्वथा सम्बन्ध नहीं है - इस बात को कहनेवाला भी दिखता नहीं है —आश्चर्य है।

(3) **पूज्य गुरुदेव के अलावा मुझे तो कोई दिखता नहीं है।**

(4) पञ्चम काल में आत्मचर्चा करता है, सुनता है - वह धन्य है। सुनना-करना से तात्पर्य परिणमनरूप होना।

- ***जय गुरुदेव***

दिनाँक - 27-4-1999

(1) कुछ बहनें और भाई रुचि रखते हैं। परन्तु बेचारे रुपये कमाने में, बाल बच्चों में ऐसे पागल हैं - जिसका वर्णन मेरे से नहीं हो सकता है।

(2) आज सारे अपने लड़के-लड़कियों को एम.ए. आदि कराकर और 2 लाख, 1 लाख की नौकरी लग जावे, सुन्दर बंगला मिल जावे, वह अपने को परमधर्मी मान के बैठे है और कहते हैं हम सुखी हो गये हैं।

अरे भाई ! तुम अजीवतत्त्व में अपना मानकर क्यों पागल हो रहे हो।

अहो ! आचार्य भगवान ने आत्मा के अन्तर्स्वभाव का रहस्य बतलाया है। इस रहस्य को समझकर अन्तरमंथन करनेयोग्य है। मात्र ऊपर-ऊपर से सुन ही नहीं लेना चाहिए, परन्तु भलीभाँति धारण करके, अन्तर में स्वयं विचार करना चाहिए।

मङ्गल समर्पण

सावधान! — सावधान!

– ***जय गुरुदेव***

दिनाँक – 28-4-1999

(1) विश्व का प्रत्येक द्रव्य अपने-अपने गुण-पर्यायों को ही स्पर्श करता है; पर को सर्वथा स्पर्श नहीं करता है।

(2) दूसरे शब्दों में — प्रत्येक द्रव्य में अस्तित्वादि अनन्त सामान्यगुण और अपने-अपने विशेषगुणों में एक व्यंजनपर्याय, अनन्त अर्थपर्यायसहित विराज रहा है — ऐसा ज्ञान में आते ही जन्म-मरण का अभाव हो जाता है। मोक्ष में प्रवेश हो जाता है।

(3) अपने बाहर तेरा कुछ नहीं है – एक बार निर्णय कर। तेरे में अनन्त गुण हैं, प्रत्येक गुण में एक समय में एक पर्याय का उत्पाद, एक पर्याय का व्यय और गुण कायम रहते हैं।

(4) हे भव्य! तू अन्दर भी कुछ नहीं कर सकता – एक बार निर्णय कर।

(5) पूज्य गुरुदेवश्री चले गये, उनकी बात उनके साथ ही चली गयी। – ***जय गुरुदेव***

(1) धर्म का एकमात्र निज आत्मा के आश्रय से ही होता है और उसके आश्रय में वृद्धि होते-होते श्रावकपना, मुनिदशा, श्रेणी, अरहन्त, सिद्धदशा हो जाती है।

(2) जो पर में साधन मानकर लगे रहते हैं, उन्हें कभी धर्म की प्राप्ति का अवकाश नहीं है।

(3) भूतार्थ के आश्रित धर्म की प्राप्ति होती है। **– जय गुरुदेव**

दिनाँक – 1-मई-1999

(1) समयसार का 211 वाँ कलश – यदि विश्व को समझ में आवे तो चारों गतियों का अभाव होकर, मोक्ष की प्राप्ति हो।

वास्तव में सम्यग्दर्शन प्राप्त किये बिना जितना ज्ञान है, वह मिथ्याज्ञान है; जितना चारित्र है, वह मिथ्याचारित्र है। सम्यग्दर्शन प्राप्त किये बिना, व्यवहाराभासी, अनादिरूढ़, मिथ्यादृष्टि, संसारतत्त्व ही कहलाता है।

– पण्डित कैलाशचन्द्र जैन

(2) परम पूज्य कानजी स्वामी ने इस कलश को अनेक प्रकार से समझाया है, ताकि जीव सुखी हो जावे।

(3) आज कोई जीव ऐसा नहीं दिखता जो वास्तविक सच्चे सुख का अभिलाषी हो, क्योंकि उन्हें सच्चे सुख का पता ही नहीं, वे सब पाँचों इन्द्रियों को सुख को ही सुख मानकर अन्धे हो रहे हैं, उसी में जीवन पूरा कर देते हैं।

(4) हे भव्य जीवो! तुम शरीरादि नहीं हो—इतना ही मान लो, अभी मोक्षमार्ग शुरु हो जावेगा। ***– जय गुरुदेव***

दिनाँक – 3-5-1999

तू स्थाप निज को मोक्षपथ में, ध्या अनुभव तू उसे।
उसमें हि नित्य विहार कर, न विहार कर परद्रव्य में॥412॥

(1) आज विश्व में जो जीव श्री कानजीस्वामी के निकट आये – उनको छोड़कर अन्य तो सब असंज्ञी समान ही हैं।

(2) परन्तु जो आज पूज्य गुरुदेव का नाम सामने रखकर – विषयों की, मान की पुष्टि करते हैं, उन्हें पूज्य गुरुदेव का समागम वास्तव में मिला ही नहीं; यदि मिला होता तो आज उल्टे चलते दिखते ही नहीं। ये सब दया के पात्र हैं ।

(3) कैलाशचन्द्र नामधारी हे भगवान आत्मा! तू व्यर्थ में चिन्ता में मत पड़, उनकी होनहार ऐसी ही है – तुझे तो समयसार, गाथा 412 में जो ऊपर कहा है, वह कर। ***– जय गुरुदेव***

दिनाँक – 5-5-1999

प्रश्न – मैं आज से लघु जैन सिद्धान्त प्रवेशिका सबको प्रेम से पढ़ाऊँगा। यदि ये पढ़ेगें तो इनका भला होगा। सम्यग्दर्शनादि आसान है, सहजरूप है। सुननेवालों को होता क्यों नहीं ?

(i) धन गढ़ा है कहीं – खोद रहे हैं दूसरी जगह।

(ii) सुख है निज आत्मा में, मान रहे हैं पर में।

(iii) जिन-जिन के जो चार या पाँच मेम्बर हैं – उन्हीं में व्यर्थ में पागल

आत्मस्वभाव के लक्ष्यवाला जीवन ही आदरणीय है, इसके अतिरिक्त दूसरा जीवन आदरणीय नहीं गिना गया है; इसलिए भव्यात्माओं को बारम्बार शुद्धात्मा की चिन्ता में और उसी के रटन में रहना चाहिए – ऐसा श्री आचार्यदेव का उपदेश है।

हो रहे हैं। उन्हीं सुखी करना चाहते हैं, अपने विचारों के अनुसार।

(iv) जिनवाणी की आज्ञा माने तो अभी सुखी हो जावे।

(v) शरीरादि में सर्वथा सम्बन्ध नहीं है। इतना मानते ही सम्यग्दर्शन हो जावेगा। **– *जय गुरुदेव***

दिनाँक – 10-5-1999

(1) शास्त्र की गद्दी पर किसी की चर्चा शोभाजनक नहीं है; अत: नहीं करनी।

(2) तत्त्व की ही बात करो तथा तीसरा भाग विशेषरूप से सुबह पूरा चलाओ – सब के लिये अच्छा रहेगा।

(3) जो आते हैं, सत्य बात सुनते हैं, परन्तु मानते नहीं हैं; शायद कभी ध्यान में आ जावे, तो अच्छा है।

(4) समय थोड़ा है, मनुष्यपना चारों गतियों के अभावरूप मिला है।

(5) तू साक्षात् भगवान है; शरीरादि नहीं है।

– *जय गुरुदेव*

दिनाँक – 11-5-1999

(1) आज सारा विश्व पाँचों इन्द्रियों के विषयों में ही आशक्त है; धर्म की बात सुनना भी नहीं चाहता – वाह रे पंचम काल।

(2) पूज्यश्री कानजीस्वामी विश्व को जगाने के लिये 45 वर्ष डंका बजाते रहे परन्तु किसी की समझ में बैठा ही नहीं — ऐसा मुझ लगता है।

(3) धर्म आसान है, तू शरीरादि नहीं है; अपने स्वभाव से अभिन्न स्वयं सिद्ध वस्तु है। **– *जय गुरुदेव***

दिनाँक – 16-5-1999

(1) सर्व सिद्धों को नमस्कार, बहुत हो गया – अब तू अपने में समा

सम्यग्दर्शन प्राप्त होने के बाद शुभाशुभ-भावरूप कार्य को करता हुआ तद्रुप परिणमित हो, तथापि अन्तरङ्ग में ऐसा श्रद्धान है कि यह कार्य मेरा नहीं है। यदि शरीराश्रित व्रत-संयम को अपना माने तो मिथ्यादृष्टि होता है।

– आचार्यकल्प पण्डित टोडरमल

जा। अर्थात्, – निज भगवान में ऐसा लीन हो जा, मोक्ष ही हो।

(2) अरे पञ्चम काल में उत्पन्न हुआ जीव, सातवें गुणस्थान से आगे नहीं जा सकता है – कोई पुरुषार्थ की कमी के कारण; काल के कारण नहीं।

(3) तू जीवतत्त्व है, तेरा विश्व के अजीवतत्त्व से सर्वथा सम्बन्ध नहीं है, जो एक बार यथार्थ निर्णय करेगा, मुक्तिरूपी मोक्षलक्ष्मी का स्वामी बन जावेगा।

(4) आज किसी को धर्म चाहिए – ऐसा मुझे दिखता नहीं है – यह भी अचम्भा है।

– ***जय गुरुदेव***

दिनाँक – 17-5-1999

(1) श्रीसमयसार की कर्ता-कर्म अधिकार की शुरु की दो गाथा – यदि ध्यान में आ जावें, बेड़ा पार हो जावे।

(2) श्रीसमयसार के एक-एक शब्द में वीतरागता ही भरी है। वास्तव में श्रीसमयसार, श्रीप्रवचनसार, श्रीनियमसार, श्रीपञ्चास्तिकाय, श्रीअष्टपाहुड़ तथा श्रीमोक्षमार्गप्रकाशक में बच्चे की तरह समझाया है। जिसकी होनहार हो, उसे बात ध्यान में आ जावेगी।

(3) परम पूज्य श्री कानजीस्वामी ने 45 वर्षों में अमृत संजीवनी पिलाने का प्रयत्न किया – किसी ने पिया नहीं – यह भी अचम्भा है।

(4) अनन्तबार समवसरण में गया, परन्तु खाली रह गया, तू जीवतत्त्व है; अजीव नहीं है।

– ***जय गुरुदेव***

दिनाँक – 19-5-1999

(1) आज विश्व में किसी भी मुमुक्षु या दूसरे किसी को धर्म की पड़ी ही नहीं।

(2) पूज्य गुरुदेव उपाय बताकर चले गये।

(3) हे आत्मा! तूझे दूसरों का जो विकल्प आता है – यह तेरे लिये उचित नहीं है।

(4) जो केवली के ज्ञान में आया है, वैसा ही हो चुका है, वैसा ही हो

'काल पके, तब मुक्ति होती है' — ऐसा जो मानता है, उसके ज्ञान की उन्मुखता अपने स्वभाव की ओर नहीं है परन्तु कालद्रव्य की ओर है; इस कारण उसका ज्ञान, मिथ्या है। उसने ज्ञानस्वभाव का आश्रय नहीं किया परन्तु कालद्रव्य का आश्रय लिया है, अर्थात् काल और ज्ञान का भेदज्ञान नहीं किया परन्तु कालद्रव्य के साथ एकत्वबुद्धि की है, वह मिथ्यात्व है।

सम्यग्दर्शन नहीं होवे, तब ज्ञान-चारित्र भी नहीं होय। सम्यक्त्व बिना जो ज्ञान है, वह कुज्ञान है और चारित्र है, वह कुचारित्र है। जब सम्यक्त्व बिना, ज्ञान-चारित्र की उत्पत्ति ही नहीं, तब स्थिति कहाँ से होवे और ज्ञान-चारित्र की वृद्धि कैसे होवे, और ज्ञान-चारित्र का फल, सर्वज्ञ परमात्मापना कैसे होय? इसलिए सम्यक्त्व बिना, सत्य श्रद्धान ज्ञान-चारित्र कभी भी नहीं होता है।

– **पण्डित सदासुखदास**

रहा है, और वैसा ही होगा– फिर चिन्ता की आवश्यकता नहीं।

(5) तू साक्षात् भगवान है – कैलाशचन्द्रादि से तेरा किसी भी अपेक्षा – सम्बन्ध नहीं है।

(6) सत्य बात का कहनेवाला दिखता ही नहीं। **– जय गुरुदेव!**

दिनाँक – 21-5-1999

(1) आज जो मुमुक्षु कहलाते हैं, परन्तु मुझे मुमुक्षु लगते नहीं हैं।

वे भी यह मर गया – यह उत्पन्न हुआ, ऐसा ही मानते हैं।

यदि जैनशासन के माध्यम से विचार करे कि तू जीवतत्त्व है; शरीरादि अजीवतत्त्व पुद्गल का खेल है।

(2) श्री समयसार व श्री मोक्षमार्गप्रकाशक तथा परमपूज्य श्री कानजीस्वामी के श्री समयसार प्रवचन 11 भाग गुजराती में अमृत की बात परोंसी है।

(3) **परमपूज्य श्री कानजीस्वामी ने सीधे सादे शब्दों में जो समझाया है,** उनका मर्म, जैन सिद्धान्त रत्नमाला में है, उन सब भागों को प्रेम से अभ्यास करें – तो संसार के अभाव का अवकाश है। ***– जय गुरुदेव!***

दिनाँक – 23-5-1999

(1) अनादि से भगवान की दिव्यध्वनि में आया है, आयेगा और वर्तमान में विदेहक्षेत्र में सीमन्धर-भगवान कह रहे हैं। उनकी बात (अर्थात्, जैनदर्शन की बात) विश्व के मिथ्यादृष्टियों के ज्ञान में नहीं आ सकती– चाहे वह 11 अङ्ग नौ पूर्व का पाठी हो।

(2) मात्र जिनको निज आत्मा के आश्रय से सम्यग्दर्शनादि की प्राप्ति हुई हो — उन्हीं ज्ञानियों को ही उसका अनुभव है।

(3) सातवें नरक में जिसको सम्यक्त्व की प्राप्ति हुई हो – स्वयंभूरमण में मगरमच्छ, जिसे अपनी आत्मा का अनुभव हुआ है; मनुष्यभव में सात तत्त्वों के नाम भी न जानता हो – परन्तु अपना अनुभव हुआ है – देवपर्याय में भी जिसको अपना अनुभव हुआ है – वे

सब ही भगवान की वाणी का मर्म जानते हैं – वे सम्यक्त्व होते ही मुक्त हो गये – श्रुतकेवली हो गये–और केवली, सिद्धदशा की तरफ चल रहे हैं।

– ***जय गुरुदेव***

दिनाँक – 23–5–1999

(1) जिन्हें अपना अनुभव हुआ, मैं उनका आदर करता हूँ। प्रथम कुन्दकुन्दभगवान ने सीमंधर–भगवान के पास से आने पर, श्रीसमयसार की, श्रीनियमसार की, रचना की – उसमें जो भगवान में दिव्यध्वनि में आया है, वह सब भर दिया है।

(2) आचार्यकल्प में पण्डित टोडरमलजी ने थोड़े में भगवान की दिव्यध्वनि का मर्म, श्रीमोक्षमार्ग–प्रकाशक में भर दिया।

(3) मेरे परम पूज्यश्री कानजीस्वामी, जिन्होंने 45 वर्ष सोनगढ़ से विश्व के प्राणियों का दिव्यध्वनि को सन्देश दिया —मैं उन सबका गुणगान कैसे करूँ! – वह गुणगान तो अपनी में लीन होने पर ही होता है।

यही बात प्रवचनसारजी में प्रारम्भ की पाँच गाथाओं में कही है। धन्य है ज्ञानियों का समागम! – ***जय गुरुदेव***

प्रश्न – अब हम क्या करें?

उत्तर – (1) विश्व में कहीं कोई ज्ञानी दिखता हो, उसके साथ रहकर ही तत्त्व का अभ्यास करना।

(2) समयसार, प्रवचनसार, नियमसार, अष्टपाहुड़, पञ्चास्तिकाय, मोक्षमार्गप्रकाशक शास्त्रों का अभ्यास करना।

(3) परम पूज्य श्री कानजीस्वामी के प्रवचनों का बारम्बार अभ्यास करना, परन्तु जो गुजराती में हैं, उन्हें पढ़ने का प्रयत्न करना।

(4) प्रथम छोटी लघु जैन सिद्धान्त प्रवेशिका याद होना आवश्यक है। – ***जय गुरुदेव***

यह मनुष्यभव प्राप्त करके करोड़ों रुपये कमाना अथवा मान प्रतिष्ठा इत्यादि प्राप्त करने में जीवन व्यतीत करने को यहाँ धन्य नहीं कहते हैं, अपितु जो अन्तरङ्ग में चैतन्य की भावना करता है, उसका जीवन धन्य है – ऐसा कहते हैं।

मङ्गल समर्पण

दिनाँक - 27-5-1999

(1) आज विश्व में जो श्री कानजीस्वामी के शिष्य अपने को कहलाते हैं, वे सब भी अपने लड़के -लड़कियों को धर्म पढ़ाना तो अच्छा मानते ही नहीं हैं।

(2) मात्र लड़के-लड़कियाँ लौकिक शिक्षा ऊँची प्राप्त करले - उनकी नौकरी अच्छी लग जावे। लड़के को विवाह में अपने भाव के अनुसार बहू मिल जावे और लड़की को अपने भाव के अनुसार गुड्डा मिल जावे — इतने में ही अपने को धन्य मानते हैं।

(3) मेरे विचार में मुमुक्षु कहलानेवाले लड़के-लड़कियाँ को लौकिक जीवन में ऐसा देखने में आता है, जो कहने में शर्म आती है।

यह विश्व में अचम्भा है। आज मुमुक्षु कहलानेवाले व्यापारादि में चाहे जो कुछ हो, बेईमानी करे पकड़े जावे, परन्तु पैसा चाहिए।

हे भाई ! तू किसी की चिन्ता मत कर। समयसार की 412 गाथा के अनुसार चल।

- ***जय गुरुदेव***

सर्वज्ञदेव ने शिष्यों को ऐसा उपदेश दिया है कि जैसे—मन्दिर की नींव तथा वृक्ष की जड़ होती है, वैसे चारित्र, धर्म है। धर्म का मूल सम्यग्दर्शन है। '**दंसण मूलो धम्मो**'।

- आचार्य कुन्दकुन्द